युगाधार गाँधी

[जीवन-कथा, जीवन का अध्ययन तथा संस्मरण

लेखक

श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक

साधना-सदन

इलाहाबाद

दो रुपये

युगाधार गाँधी

[जीवन-कथा, जीवन का अध्ययन तथा संस्मरण]

लेखक

श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक

साधना-सदन

इलाहाबाद

दो रुपये

प्रकाशक : साधना - सदन, इलाहाबाद

१९४७

गाँधी विचारधारा के ग्रंथ

१.	गांधीवाद की रूपरेखा (सुमन)	१॥)
२.	स्त्रियों की समस्याएँ (गांधी जी)	१॥)
३.	अमृतवाणी (गांधी जी)	१॥)
४.	गांधीवाणी (सुमन)	३)
५.	युगाधार गांधी (सुमन)	२)
६.	गांधी-मार्ग (आ० कृपलानी)	२॥)
७.	समग्र ग्राम सेवा की ओर (धीरेन भाई)	८)
८.	सेवा धर्म (अप्पा पटवर्धन)	२।)

साधना-सदन

प्रयाग

मुद्रक : [illegible] लाल, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

दो शब्द

गांधी जी एक युग-पुरुष हैं। युग-पुरुष की भांति ही उन्होंने हमारे सम्पूर्ण जीवन को आच्छन्न कर लिया है। हमारी इच्छा-अनिच्छा का कोई प्रभाव नहीं, हम चाहें या न चाहें, उन्हें अपने जीवन की परिधि से अलग करना हमारे लिए संभव नहीं। यह वही थे जिन्होंने शरीर से महान् पर आत्म-शक्ति, प्राण-शक्ति में अत्यन्त दुर्बल देश में प्राण फूँका। उनके मंत्र से दीक्षित होते ही मुर्दे-सा पड़ा हुआ भारत अँगड़ाई लेकर, जगकर एकाएक उठ खड़ा हुआ। पिछले सत्ताईस वर्षों का इतिहास एक युग का इतिहास है। वह एक राष्ट्र के जीवन का इतिहास है और इस इतिहास का नायक एक देखने में दुर्बल पर असीम शक्ति का उत्स, मुर्दों के बीच जादू के करिश्मे करने वाला, यह गांधी है।

हो सकता है, आप उसे न समझें; हो सकता है, आपके विकृत मन उससे चिढ़े हुए हों; हो सकता है कि आप उस पर दांत पीसते हों और उसके दर्शन करके अपने को धन्य मानने वाले तो अगणित हैं। पर यह नहीं हो सकता कि आप उससे—उसके असर से बचे हुए हों। आप प्रशंसा करें, आप निंदा करें, आप खीझें, आप गालियां दें पर हृदय से उसे निकाल फेंकने में आप असमर्थ और असहाय हैं।

कुछ इस प्रकार वह हमारे-आपके जीवन में प्रवेश कर चुका है।

यह वही है जिसने सोते हुए हमें जगाया; यह वही है जिसने हज़ारों वर्ष से हमारे प्राणों में विष की भांति मिली दास वृत्ति को दूर किया; यह वही है जिसने एक मायाविनी सभ्यता के मोह-जाल से हमें मुक्त किया; यह वही है जिसने हमारे झुके हुए कंधों, झुके हुए मस्तकों को दुनिया की भीड़ में ज़रा ऊँचा कर दिया; यह वही है जिसने संसार के इतिहास में पहली बार एक बिल्कुल नवीन अस्त्र—अहिंसा—का इतने व्यापक क्षेत्र में उपयोग करके एक अत्यन्त विस्तृत और शक्तिमान साम्राज्य की दासता की कड़ियों से हमें मुक्त किया और इतने सस्ते में राष्ट्र को राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गई।

* * *

करता है। हम आग लगाना चाहते हैं, जो रोकता है उसकी ओर
गूनी आंखों से देखते हैं और वह है कि हर जगह आग बुझाता
फिरता है। आप उस पर क्रुद्ध होते हैं, चिढ़ते हैं, कंकर-पत्थर फेंकते
हैं, दांत पीसते हैं पर उस माता की भांति, जो अपने भूले बच्चों को
लड़कर मिटते नहीं देख सकती, वह निश्चल इस ज्वाला को बुझाने
में लगा हुआ है। जब उसे सन्तोषपूर्वक एक जगह बैठना और स्वतंत्र
राष्ट्र को अपने आशीर्वादों से पावन करना था, वह हमारी शत-शत
भूलों के बीच दौड़ता और सन्मार्ग की ओर इंगित करता फिरता है।

भले आप उसे न मानें, उसका तिरस्कार करें, उसे गालियां दें,
पर जब आप उसके स्नेह-बन्धन से छूट नहीं सकते तब क्या यह
अच्छा न होगा कि आप ज़रा ठहर कर उसे देखें, परखें, उसे ठीक
तरह समझने की चेष्टा करें? वह क्या है, कैसे बना है, क्या चाहता
है, इसे समझ लें, तब अपना निर्णय दें।

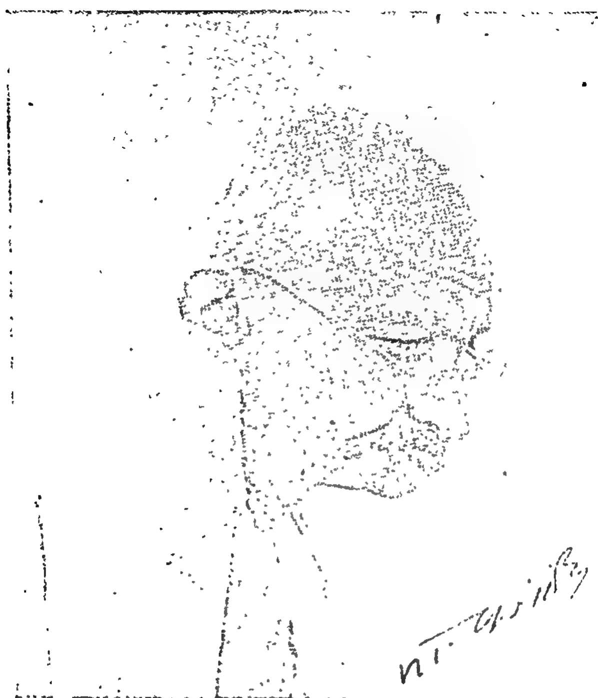
और आप तक उसके सम्बन्ध में यही अपेक्षित ज्ञान पहुँचाने के
लिए यह पुस्तक है। पहले पढ़िए तब राय दीजिए। तब तक आपकी
वाणी और आपके निर्णय का मौन रहना उचित होगा।

जीवन-कथा तथा तालिका को अप-टु-डेट बनाने में मेरे प्रिय बन्धु
श्री ज्ञानचंद जैन, एम० ए० ने बड़ी सहायता की है। एतदर्थ मैं उनके
प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

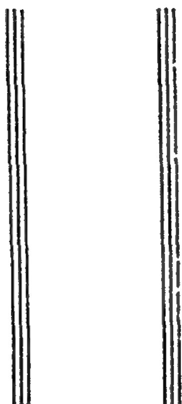
पुस्तक में क्या है ?

गाँधी—अपने विविध रूपों में

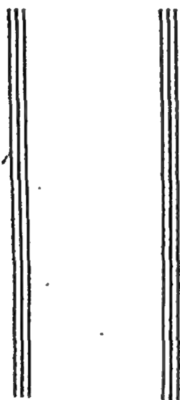


महात्मा

युगाधार गाँधी



मोहनदास कर्मचन्द गाँधी
['महात्मा']



जन्म
२ अक्तूबर १८६९ ई०

जन्म
आश्विन कृष्ण १२ सं० १९२५ वै०

"I see in Mr. Gandhi the patient sufferer for the cause of righteousness and mercy, a true representative of the crucified Saviour than the men who have thrown him into prison and yet call themselves by the name of Christ."

—Lord Bishop of Madras

"मैं महात्मा गांधी में सदाचार और क्षमा के लिए धीरतापूर्वक दुःख सहने वाले पुरुष को,—तथा जिन्होंने उन्हें जेल में डाल दिया है और फिर भी अपने को क्राइस्ट के नाम पर पुकारते हैं उनकी अपेक्षा क्रुस पर चढ़े हुए उस त्राता (ईसा) के एक अधिक सच्चे प्रतिनिधि को देखता हूँ।"

—मद्रास के विशप

"We are fortunate and gratefull that fate has bestowed upon us so luminous a contemporary—a beacon for' generations to come."

—Albert Einstein.

"हम बड़े सौभाग्यशाली और कृतज्ञ हैं कि भाग्य ने हमें ऐसा तेजस्वी समवर्ती पुरुष दिया जो आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ रहेगा।

—अलबर्ट आइन्स्टीन

The pillar of a people's hope
The centre of a world's desire.

—एक—

पहली झाँकी !

एक आँधी की भाँति वह मेरे जीवन में आया;—पर आँधी की
ति उड़ा नहीं ले गया। न आँधी की भाँति वह क्षण-भर रह कर
ला गया। उसने स्वार्थ की कुटिल प्रवृत्तियों को पकड़ा और उनकी
ति मोड़ दी। जीवन की तह में, अभिलाषाओं की राख के नीचे,
ोटी-सी बुझने-बुझने जैसी एक-दो चिनगारियाँ पड़ी थीं, इस प्रभञ्जन
उन्हें जगा दिया। धूल उड़ गई और नीचे से धधकती हुई आग,
सते-हँसते जीवन के क्षितिज पर उठी !

यह १९२१ की बात है। तब पहली बार उसे देखा। पर यह तो
आँखों का देखना था। बिना आँखों के—हृदय की आँखों से—तो
उससे पहले ही उसे देखा था,—उसके बारे में पढ़ा भी था और सुना
भी था। और—यह मेरे लिए, मेरे जीवन की एक घटना और
सुखद स्मृति है कि मेरे साहित्यिक जीवन का आरम्भ उसी को लेकर
हुआ। १२-१३ वर्ष की अबोध आयु में मैंने पहला लेख उस पर
लिखा—पहला लेख जो एक मासिक पत्र में प्रकाशित हो सका।
उस समय, वह जनता के लिए कोरा 'कर्मवीर' था और आज उसके
साथ 'महात्मा' भी है। प्रतिक्षण अपने मार्ग पर बढ़नेवाली नदी के
समान उसका जीवन आत्म-साक्षात्कार के अमृत-सिंधु की ओर चला
जा रहा है। तब जो वह था उससे आज वह बहुत ऊँचा है। भावना
का वेग क्रमशः कम होता गया है; विवेक अत्यन्त दिव्य रूप में प्रकट
होता गया है। भक्त की विह्वलता अपेक्षाकृत कम और ज्ञानी की
अनासक्ति तथा सद्सद्-विवेक धीरे-धीरे बढ़ता गया है। आज वह

बिना अर्थ का नहीं, सचमुच का, 'महात्मा' है—चाहे वह स्वयं ही इसे इन्कार करे। और उसकी इन्कारी तो उसके महत्व का एक प्रमाणपत्र ही है।

पर हाँ,—क्या कह रहा था? बनारस में १६२१ में पहली बार उसे देखा। तब से जहाँ आत्मा—'स्पिरिट'—में बहुत परिवर्त्तन हो गया है शरीर, अपनी सीमा और बंधन में, बहुत थोड़ा बदला है। थोड़ा दुबला जरूर हो गया है पर वैसा न होना तो आश्चर्य की बात होती। आकृति में कोई विशेषता न तब थी, न अब है पर आकृति-विज्ञान के विद्यार्थी को उसके कान, ओंठ और आँखें अवश्य आकर्षित करती हैं। कान बड़े, खुले हुए। मानों जगत् में जो कुछ श्रेष्ठ है सब सुनने और सब ले लेने के लिए उत्सुक हैं। ओठों से जीवन की अभिव्यक्ति—'एक्सेप्रशन'—फूटी पड़ती है। इतने 'एक्सेप्रसिव' ओठ बहुत ही कम लोगों के देखे गये हैं! और आँखें! उनमें ऐसा कुछ नहीं जो साहित्य की परम्परा में स्थान पाने योग्य हो। फिर भी उसमें कुछ ऐसा जरूर है जो रह-रह कर प्रकाशित होना—जीवन में चमक उठना चाहता है। रह-रह कर उनमें एकाएक प्रकाश आ जाता है और वे जुगनू की भाँति चमक उठती हैं।

× × ×

उसने अपनी सत्य की चिर-साधना के सहारे संसार को सत्याग्रह का दान दिया है। यह सत्याग्रह, जिसके अनेक विराट रूप हमने भारतीय राजनीति और समाज-जीवन के प्रांगण में देखे हैं और जिसके विशुद्ध नहीं, सामान्य रूप के सहारे हम आज सस्ते में स्वतंत्र हो गये, जगत् के लिए इस दिव्य आत्मा का सन्देश है। इसकी सिद्धि में जगत् के लिए एक महान् आशा है, पीड़ित मानवता का त्राण है। इसकी असफलता संसार के लिए भयंकर होगी (क्योंकि वह झूठ के आगे सत्य के हारने—जैसा होगा)। इसे वह भी जानता है और इसीलिए उसने इसकी सफलता के लिए अपनी सारी शक्ति

। दी है।

इस समय वातावरण उलझा हुआ है। उसमें उत्ताप है। ंत्र राष्ट्र मुक्त होकर भी खंडित है। एक से हम दो हो गये हैं। ल शरीर से नहीं, मन से भी। एकता का अमृत वैमनस्य के विषय डूब गया है। शत-शत गृहों में जीवन के दीप बुझ गये हैं और ण की ज्वाला मानवता की छाती पर धू धू कर के जल उठी है; ारे युग-संचित विश्वास जब अस्थिर और कम्पित हैं, तब वह, जिसे ाज राष्ट्र के हृदय-सिंहासन पर बिठाकर हमें पूजा करनी थी, त्तेजित भीड़ों के तिरस्कार और क्रोध के अंगारों पर कभी यहाँ कभी हाँ दौड़ता फिरता है,—जन-कल्याण के लिए शंकर की भाँति विष-ान करके, इन दहकते अंगारों को प्रेम की वर्षा से बुझाने वाला। खण्डित राष्ट्र को शरीर से नहीं तो हृदय से एक करने को तत्पर। जन भूखण्डों पर क्रूरता का नग्न नृत्य होता है; जहाँ जाने में ीरों तथा 'अहिंसा' की हँसी उड़ाने वालों के प्राण काँपते हैं तहाँ-तहाँ अपने प्रेम का अलख जगाते हुए वह घूमता है। लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं, उसकी ओर आश्चर्य और उसके कार्य की ओर किंचित् अविश्वास से देखते हैं। पर उसके प्रेम रूपी ब्रह्मास्त्र के आगे देखते-देखते सम्पूर्ण हिंसक अस्त्र-शस्त्र शिथिल पड़ जाते हैं। जहाँ खून की प्यास चटखती थी तहाँ प्रेम की गागर लोग ढूँढ़ने लगते हैं। जहाँ लोग एक-दूसरे की शक्ल से नफरत करते थे तहाँ गले लगते हैं। जैसे भयंकर दुःस्वप्न से किसी ने झकझोर कर उन्हें जगा दिया हो कि 'अरे हम क्या कर रहे थे!' (देखिए गांधी जी का कलकत्ता-प्रवास का जादू!)। जब हम स्वतंत्रता के उन्मद स्पर्श से अचेत-से हो रहे हैं तब वह, जिसकी देन आज का दिन लाने में सब से अधिक है, अनासक्त की भाँति और हमारे मानसिक विष को दूर करने अपनी अगम यात्रा में चल पड़ा है। जब उसे अपने चरणों से दिल्ली की मिट्टी को पावन करना था तब अपने हर्ष का भाग छोड़ वह एकाकी

राष्ट्र के चिर जीवन का मंत्र जगाने दूर जा बैठा। यह सब उसके सनातन क्रम के अनुरूप है। एक दिन अपनी प्रियतम स्मृतियों से गूंथे हुए सत्याग्रह-आश्रम (साबरमती) को उसने योगी की निष्ठुरता के साथ ध्वंस कर दिया, अपनी प्रिय संस्था (जिसमें आत्मनिष्ठ अनेक सेवक थे) गांधी सेवा संघ को भंग किया—सर्वजनहितार्थ उसने क्या नहीं किया। जिसे ममता से बनाया उसे सत्य की साधना में बाधक होने पर निष्ठुर वैराग्य-भावना से एक क्षण में छोड़ दिया।

प्राचीन ऋषियों के एक जीवित प्रतीक की भाँति, जो संसार के होकर भी संसारी न थे और दुःख में, सुख में, सम्पत्ति में, विपत्ति में जिनकी साधना, जन-कल्याण के लिए, चलती रहती थी, भारत और विश्व को प्रकाश एवं जीवन का पथ दिखाने में वह सचेष्ट है।

यह निश्चय है कि जो कुछ वह करने जा रहे हैं और जो कुछ करेंगे, चाहे वह कैसा ही हो—पर ऐसा होगा जो निद्रालु जन-समूहों को हिलाकर छोड़ेगा। हमारा हृदय तो, दुर्बल प्रेमी की तरह, अभी से काँपता है और हम तो हाथ उठा कर मालिक से उसकी चिरायु की भीख माँगते हैं।

वह तपस्या का धधकता हुआ अंगारा है। उसके बारे में कुछ कहना सरल नहीं पर जो कुछ कहना है बाद में कहेंगे। तब तक आइए, उसके जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डाल लें।



—दो—

जीवन-कथा

गांधी नाम से तो ऐसा ही मालूम होता है कि गांधी-परिवार पहले पंसारी का काम करता रहा होगा। पर गांधी जी के पहले तीन पुश्त तक वह काठियावाड़ की भिन्न-भिन्न रियासतों में दीवानी का काम करता आया। इनमें श्री उत्तम चन्द गांधी पोरबंदर के दीवान थे पर पीछे अपनी निर्भीकता के कारण उन्हें वह स्थान छोड़ना पड़ा। इनके पुत्र कर्मचन्द गांधी भी पहले पोरबन्दर (सुदामापुरी) और बाद में राजकोट और बांकानेर के दीवान रहे। वह एक अनुभवी राज्याधिकारी थे, पर स्कूली शिक्षा उनकी बहुत कम—बिलकुल प्रारम्भिक हुई थी। कर्मचन्द गांधी एक सद्‌गृहस्थ, निर्भीक और राज्य-काज में निपुण पुरुष थे। उनमें सत्य की प्रवृत्ति थी। रिश्वत इत्यादि से दूर भागते थे। इन गुणों के साथ उन में क्रोध और विषयासक्ति दो दोष भी थे। उनके एक-एक कर के चार विवाह हुए। उन की अन्तिम पत्नी पुतलीबाई साध्वी और निष्ठावान थीं। व्रत, उपवास और पूजा-पाठ में उनकी विशेष रुचि रहती थी। वह बहुत ही दयालु, भावुक और कोमल प्रकृति की थीं। इन्हीं माता-पिता के घर, पोरबन्दर में, २ अक्तूबर १८६९ ई० (अश्विन कृष्ण १२ संवत् १९२५) को मोहनदास (गांधी जी) का जन्म हुआ। यह अपने माता-पिता की अन्तिम सन्तान थे।

परिवार एवं जन्म

बचपन में मोहनदास साधारण बुद्धि के बालक थे, उनमें विशेष प्रतिभा न दीख पड़ी थी। इनके आरम्भिक वर्ष पोरबन्दर में ही बीते। अतः वहाँ की ही एक पाठशाला में यह पढ़ने को बैठाये गये। उस समय उन का मन पढ़ने में विशेष न लगता था। उन्होंने स्वयं लिखा है—

बचपन एवं प्रारम्भिक शिक्षा

"उस समय मैंने लड़कों के साथ मेहताजी—मास्टर साहब—को सिर्फ गाली देना सीखा था इतना याद पड़ता है; और बात याद नहीं आती इससे यह अनुमान करता हूँ कि मेरी बुद्धि मंद रही होगी और स्मरण-शक्ति उन पंक्तियों के कच्चे पापड़ की तरह रही होगी जिन्हें हम लड़के गाया करते थे—

"एकड़े एक, पापड़ शेक;
पापड़ कच्चो,—मारो—"

पोरबन्दर से जब इनके पिता राजकोट गये तब मोहनदास की उम्र लगभग सात वर्ष की थी। वहाँ इनकी शिक्षा मन्दगति से चलती रही। यह पाठशाला के साधारण विद्यार्थियों में थे। इनका स्वभाव बड़ा संकोची और झेंपू था और यह किसी से ज्यादा मिलते-जुलते न थे। पाठशाला खतम होती और घर आ जाते। पर पिता-माता के अच्छे संस्कारों की मोहनदास में प्रबलता थी। झूठ बोलने का दुर्गुण कभी उनमें न आया। मोहनदास में सत्य की ओर बचपन से ही रुचि और प्रवृत्ति थी। पाठशाला के वातावरण में भी इन गुणों में कमी न आई। ऐसी अवस्था में जब स्कूल के अन्य विद्यार्थी तरह-तरह की 'चालाकियाँ' सीख जाते हैं और मास्टर भी इस कार्य में उनकी कुछ मदद नहीं करते तब अपने प्रबल संस्कारों के कारण मोहनदास सत्य में स्थिर रहे[1], यह मानो इस बात की सूचना थी कि भावी जीवन किस प्रवाह में बहेगा।

---

[1] गांधी जी ने आत्म-कथा में एक घटना दी है—

"हाईस्कूल के प्रथम ही वर्ष की परीक्षा के समय की एक घटना लिखने योग्य है। शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर, जाइल्स साहब, निरीक्षण करने आये। उन्होंने पहली कक्षा के विद्यार्थियों को पांच शब्द लिखवाये उनमें एक शब्द था 'केटल' (kettle)। उसे मैंने गलत लिखा। मास्टर साहब ने मुझे अपने बूट से ठोकर मारकर चेताया। पर मैं क्यों चेतने

सत्य के साथ ही इनमें गुरुजनों—बड़ों—के प्रति आदर और भक्ति [क]ा भाव भी आरम्भ से था। इसलिए मास्टरों के प्रति अवज्ञा का, उनको मूर्ख बनाने का जो भाव आज कल के लड़कों में होता है, उनमें न था। पढ़ने-लिखने में यह सुस्त थे। पाठ्य पुस्तकें ही पूरी नहीं पढ़ पाते थे फिर [ब]ाहरी पुस्तकें कहाँ से पढ़ते पर इस विद्यार्थी-अवस्था की दो घटनाओं [क]ा उल्लेख उन्होंने किया है। एक तो यह कि एक दिन अपने पिता [क]ी खरीदी एक पुस्तक 'श्रवण पितृ-भक्ति नाटक' पर इनकी दृष्टि पड़ गई। न जाने क्यों पढ़ने को मन ललचाया। उसे पढ़कर माता-पिता के प्रति उनके हृदय में जो भक्ति थी वह और जाग्रत हुई। शीशे में तस्वीर दिखाने वालों से भी एक दिन श्रवण की मातृ-पितृ-भक्ति के दृश्य देखे; हृदय गद्‌गद हो गया; आँखों में आँसू भर आये। इस पुस्तक का और इस दृश्य-दर्शन का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

गुरुजनों के प्रति भक्ति

इसी प्रकार जब यह पढ़ रहे थे तब एक नाटक-कम्पनी वहाँ खेल दिखाने आई। पिता की आज्ञा से उन्होंने 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखा। इसका भी इन के चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़ा। वह लिखते हैं—"इस नाटक को देखते मैं अघाता न था। बार-बार उसे देखने का मन हुआ करता। पर यों बार-बार कौन जाने देने लगा? जो हो, अपने

लगा? मेरे दिमाग में यह बात न आई कि मास्टर मुझे आगे के लड़के की स्लेट देखकर सही लिखने का इशारा कर रहे हैं। मैं यह मान रहा था कि मास्टर साहब तो इस बात के लिए गश्त लगा रहे थे कि हम एक दूसरे को देख-देख कर न लिख लें। सब लड़कों के पाँचों शब्द सही निकले और मैं ही अकेला गधा साबित हुआ। बाद में मास्टर ने मेरी 'मूर्खता' मुझे बताई, परन्तु उनकी अक्ल का कुछ असर मेरे दिल पर न हुआ। दूसरों को देख-देख कर लिखना मुझसे न सधा।"
—आत्मकथा (हिन्दी), प्रथम खण्ड २; पेज २१—२२

मन में मैंने इस नाटक को सैकड़ों बार खेला होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आते। यह धुन लगी कि हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों न हों? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है।" यहीं इन के बाद के जीवन की कुंजी हमें मिलती है। गुरुजनों के प्रति भक्ति एवं सत्य की दृढ़ता के जिन संस्कारों की बात हम ऊपर लिख आये हैं उनको इन दो घटनाओं ने लड़कपन में ही खूब दृढ़ कर दिया। 'हरिश्चन्द्र की तरह क्यों न हों' इस प्रेरणा और लगन ने ही उनको इस दिव्य रूप में जगत के सामने उपस्थित किया है।

धार्मिक एवं सामाजिक विचारों की दृष्टि से देखें तो इन के कुटुम्ब की गणना कट्टर कुटुम्बों में की जानी चाहिए। इसके परिणाम-स्वरूप

विवाह

हम सात वर्ष में इनकी सगाई होते और तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह कस्तूर बाई के साथ होते देखते हैं। विवाह के समय तो वैवाहिक मर्यादा को यह क्या समझते? उम्र एवं बुद्धि ही कितनी थी। उस समय तो यह उनको तमाशे एवं मनोरंजन की चीज़ सी मालूम हो रही थी। पैत्रिक संस्कारों के कारण या उस समय की साधारण दाम्पत्य-जीवन की प्रथा की दृष्टि से हो, विवाह के बाद इनका जीवन पत्नी के साथ बहुत विषयासक्त हो गया था। यह आसक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि दिन को स्कूल में भी इनका मन पत्नी ही में लगा रहता था। इनकी पत्नी कुछ विशेष पढ़ी लिखी न थीं और जहाँ विषय भावना की प्रबलता हो वहाँ इच्छा रहने पर भी कोई क्या पढ़ा सके? इन्होंने भी बहुत चाहा पर पढ़ा न सके। पत्नी के सामने आने पर समय गप-शप में निकल जाता।

कक्षा में चाहे लापरवाही कर जाते पर सदाचरण में सदा जागरूक रहते थे। यदि किसी गलती के लिए कभी कोई शिक्षक उलाहना देता तो इन्हें बहुत चुभता। एक बार किसी गलती पर मास्टर ने इन्हें पीटा। इसका इनको बहुत दुःख हुआ; फूट-फूट कर रोये। दुःख पिटने का नहीं, इसलिए हुआ कि वह पिटने के योग्य समझे गये। इन कारणों से सत्यप्रिय होने के साथ वह अपने कार्यों के विषय में बहुत सावधान रहते थे। एक घटना है। जब वह सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तब संघ-व्यायाम स्कूल में अनिवार्य कर दिया गया था पर इनका मन उसमें न लगता था। पिता की सेवा में ज्यादा मन लगता था। एक दिन की बात है, सुबह का स्कूल था। शाम को ४ बजे व्यायाम में जाना था। इनके पास घड़ी न थी। बादल छा गये थे इसलिए समय का कुछ ठीक ज्ञान न रहा। जब वह पहुँचे तो व्यायाम समाप्त हो चुका था और सब लोग घर चले गये थे। दूसरे दिन जब अनुपस्थिति का कारण पूछा गया तो जो बात थी, उन्होंने बता दी पर मास्टर को विश्वास न हुआ और उन्होंने जुर्माना कर दिया। उस दिन उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने यह शिक्षा ग्रहण की कि सत्य का मार्ग ग्रहण करने वाले को सदा सावधान रहना चाहिए।

काली रेखाएँ

सत्य के प्रति इतना आग्रह होते हुए भी उस समय, संगतिदोष से, दो एक काली रेखाएँ इनके जीवन में आ गईं। किशोरावस्था मनुष्य के लिए बहुत सँभाल कर रखने की चीज है। इन दिनों बहुतेरे ऐसे मित्र मिल जाते हैं जो गोपनीय बातों में रस लेते हैं और प्रलोभन एवं कुतूहल-वश प्रायः इनके फेर में पड़ जाते हैं। मोहनदास की भी एक लड़के से घनिष्ठता हो गई। उसके संस्कार अच्छे न थे और उसमें कई दुर्गुण थे। उसके सम्बन्ध में माता, बड़े भाई और पत्नी ने चेतावनी भी दी पर यह समझते थे कि उसकी बुराइयों का असर मुझ पर न पड़ेगा उलटा

मैं उसे सुधार सकूँगा। इसलिए इन चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया।

आज की भाँति ही उन दिनों कुछ युवक श्रद्धाहीन अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से युरोपीय फैशन के मोह-जाल में फँस गये थे। उस संगी ने मोहनदास को बतलाया कि कितने ही बड़े-बड़े आदमी और हिन्दू शिक्षक छुपे-छुपे मांसाहार और मद्यपान करते हैं। पहले तो इन बातों में इन्हें दुःख होता पर उस मित्र ने समय समय पर ऐसी बातें कर कर के इनके हृदय को दुर्बल कर दिया। मोहनदास के मँझले बड़े भाई पहले से ही इस व्यसन में फँसे हुए थे। वह खूब खेलते कूदते दौड़ते। उनमें फुर्ती थी तथा वह निर्भय भी थे। इधर मोहनदास सुस्त, डरपोक तथा दुर्बल थे इसलिए उन्हें अपनी अवस्था पर ग्लानि होती रहती थी। उस 'मित्र' ने इनके भाई तथा उसी प्रकार के अन्य लड़कों के उदाहरण दे-देकर उन्हें यह समझाया कि मांसाहार से शक्ति बढ़ती है। धीरे-धीरे इन बातों का असर मोहनदास पर पड़ा और कुछ ही दिनों में इन्होंने मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार कर ली तथा इन्हें विश्वास हो गया कि इससे मैं बलवान हो सकता हूँ और यदि सारा देश मांसाहार करने लगे तो अँगरेज़ों को हरा सकता है।

धीरे-धीरे बातें आगे बढ़ीं। मांसाहार आरम्भ करने का दिन भी निश्चित हो गया। पर यह सब निश्चय गुप्त रखा गया क्योंकि यद्यपि बुद्धि मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार करती थी पर हृदय में वैष्णव संस्कार भरे हुए थे। माता-पिता सब कट्टर वैष्णव थे तथा चारों ओर के वातावरण में मांसाहार के प्रति तिरस्कार का अत्यन्त तीव्र भाव वर्तमान था। मालूम होने पर माता-पिता को दुःख होगा, इस विचार से भी सारी बातें गुप्त-रखने का निश्चय हुआ। दूर नदी के किनारे एक जगह मिल गई। उस समय इनके मन की दशा विचित्र थी। उसमें संघर्ष चल रहा था। एक ओर वीर बनने और सुधार करने

उत्साह और दूसरी ओर चोर की तरह छुक-छिप कर काम करने शर्म। नियत स्थान पर पहुँचे। मांस के साथ डबलरोटी भी थी पर ।। ही चीजें इन्हें अच्छी न लगीं। मांस चमड़े-जैसा मालूम हुआ। । भर नींद न आई। ऐसा मालूम होता था कि कोई बकरा पेट में बें' बोल रहा है। पर 'सुधार' में तो ऐसी कठिनाई आ ही जाती यह सोचकर और मित्रों के उत्साह-दान से आगे भी क्रम चला। न लोगों ने कई प्रकार की स्वादिष्ट चीजें बनानी शुरू कीं। इस १६ समय-समय पर पाँच-छः बार मांस इन्होंने खाया होगा।

पर उत्तम संस्कारों के कारण इस बात को लेकर इन के मन में ा युद्ध चला करता। जिस दिन मांस खाते उस दिन घर खाना न ाय जाता और माँ से झूठे बहाने करने पड़ते। सत्य की निष्ठा एवं मातृ-भक्ति के कारण इन्हें ये बातें बहुत खलती थीं। दिल में रहती कि मैं माता-पिता को धोखा दे रहा हूँ। धीरे-धीरे इस भाव ने जोर पकड़ा और उन्होंने यह निश्चय कर लिया—'माता-पिता से झूठ बोलना पाप है, अतः जब तक वे जीवित हैं मांस खा कर धोखा देना उचित नहीं। जब वे न रहेंगे तब स्वतंत्रतापूर्वक खायेंगे।' उस दिन से मांस छूटा।

पर उस 'मित्र' ने यहीं तक नहीं, आगे भी कदम बढ़ाया। मांसाहार से व्यभिचार की ओर गति हुई। एक बार दलदल में गिरने पर धीरे-धीरे नीचे जाने लगा। एक दिन मोहनदास को भी वह एक चकले में ले गया। बाई से सब बातें उसने पहले से ही तय कर ली थीं और उसे पैसे भी दे दिये थे। पर अपने झेंपू स्वभाव के कारण मोहनदास बच गये या यों कहें तो ज्यादा अच्छा होगा ईश्वर ने उन्हें बचा लिया। वह जाकर मारे शर्म के-गूंगे-से उस बाई की चारपाई पर बैठ गये। एक शब्द मुँह से न निकला। इससे वह बाई झल्लाई और उन्हें बाहर कर दिया। उस समय तो उन्हें अपने इस अपमान और

दलदल में फँसते-फँसते

'नामर्दी' पर बड़ी ग्लानि हुई पर पीछे ज्ञान होने पर उन्हें यह विश्वास हो गया कि भगवान ने ही रक्षा की है।

इसी प्रकार चचा इत्यादि की देखादेखी सिगरेट पीने की आदत १२-१३ वर्ष की अवस्था में पड़ी। सिगरेट के लिए पैसे न मिलते इसलिए चचा की पी हुई अधजली सिगरेटें चुरा-चुरा कर पीते। पीछे नौकरों के पैसों में काट-कपट कर चोरी करने लगे। पर चोरी-चोरी यह काम करने में बड़ी ग्लानि होती। यहाँ तक कि इसी ग्लानि में एक दिन आत्म-हत्या कर लेने का भाव मन में आ गया। धतूरे के बीज खोज लाये। मन्दिर के एकान्त स्थल में शाम को वह आत्म-हत्या करने चले पर एक-दो बीज खाते ही हिम्मत टूट गई। मरना सरल काम नहीं। खैर, आत्म-हत्या तो न हुई पर इससे एक अच्छा फल यह निकला कि सिगरेट के जूठन पीने एवं नौकरों के पैसे चुराकर, उससे सिगरेट लाने की बान छूट गई।

इस प्रकार चोरी की एक घटना का उल्लेख उन्होंने अपने 'सत्यना प्रयोगो' में किया है। इनके मांसाहारी मँझले भाई ने व्यसनों में फँस कर २५) के लगभग कर्ज कर रखा था। उनके पास पहनने का एक सोने का कड़ा था। इन दोनों भाइयों ने यह निश्चय किया कि इसमें से एक तोला सोना निकाल लिया जाय। तदनुसार कड़ा कटा, कर्ज चुका पर इनका मन इस चोरी के कारण इनको धिक्कारने लगा। मन में आया कि पिता जी से यह बात कह देनी चाहिए। उनके नाराज होने एवं इस घटना से उनके मन और फलस्वरूप स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना थी। फिर भी दिल की प्रेरणा इतनी जबर्दस्त थी कि इन्होंने पिता जी के नाम पत्र लिखा। उसमें सब बातें लिख दीं और प्रतिज्ञा की कि आप दुःख न करें, आगे से ऐसा मैं न करूँगा। पत्र पढ़ कर पिता की आँखों से आँसू बहने लगे। दोनों रोये। पर इससे मन धुल गया। और हृदय का बोझ दूर हो गया। इनके दोष-स्वीकार से पिता इनके सम्बन्ध में

ांक हो गये।

इनके पिता को बहुत दिनों से भगंदर रोग था। धीरे-धीरे रोग न बढ़ गया। और इसी सिलसिले में १८८५ ई० में उनकी मृत्यु हुई। इसी साल कस्तूर बा के पेट से एक बालक उत्पन्न हुआ। और इतनी कच्ची उम्र में सन्तान ने का जो परिणाम होता है वही हुआ, दो चार दिन में ही उसकी त्यु हो गई।

ा का देहावसान

बचपन से ही इन्होंने सत्य को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया था तीलिए हृदय में उदारता थी। इनकी बूढ़ी दाई ने इन्हें राम-नाम का महत्व बताया था। 'राम-नाम से भूत प्रेत भाग जाते हैं' यह कह कर उसने इन्हें इसका अभ्यास करने की सलाह दी थी। आज वह राम-नाम में अमोघ शक्ति पाते हैं। यह बीज उसी दाई—रंभा—का बोया हुआ था। अपने चचेरे भाई के कहने से यह 'राम-रक्षा' का पाठ भी किया करते थे और रामायण की कथा भी सुनते। यद्यपि धर्म में इतनी श्रद्धा न थी पर इन बातों के संस्कार हृदय में बैठते गये। वैष्णव होते हुए भी इनके घर वाले राम-मन्दिर इत्यादि में जाते। इससे साम्प्रदायिक संकुचितता का भाव इनमें न रह गया। कृष्ण राम सब एक से रहे। इनके पिता के पास जैन धर्म के आचार्य भी आया करते। मुसलमान मित्र भी आते और अपने धर्म की बात करते। इससे इन धर्मों के प्रति भी किशोर मोहनदास के हृदय में समभाव पैदा हुआ। परन्तु इन सब से इन्होंने दो बातें निश्चित रूप से लड़कपन से ही ग्रहण कीं। एक तो यह कि संसार नीति पर खड़ा है; दूसरी यह कि सत्य सब प्रकार की नीति का निचोड़ है। इसी से उनमें अहिंसाभाव का भी जन्म और विकास हुआ। 'अपकार का बदला उपकार', यह भाव दृढ़ हुआ।

र्व-धर्म समभाव

१८८७ ई० में मोहनदास ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। और उसके बाद भावनगर के श्यामलदास कालेज में भर्ती हुए पर वहाँ

पढ़ाई में मन न लगता, विषय कठिन मालूम पड़ते। ऐसे ही इनके पिता के मित्र एवं कुटुम्ब के सलाहकार श्री मावजी दवे ने इनके घर वालों से कहा कि इन्हें विलायत भेज कर वैरिस्टरी पास करानी चाहिए। बड़ी कठिनाई से भाई और माता ने आज्ञा दी। माता जी के सामने इन्होंने मांस, मदिरा और स्त्री-संग से दूर रहने की प्रतिज्ञाएँ लीं। विलायत जाने की बात सुन कर जाति की पंचायत ने इनको रोकना चाहा पर ये टस से मस न हुए। फलतः जाति-वहिष्कृत होकर भी ४ सितम्बर सन् १८८८ को विलायत के लिए रवाना हुए।

विलायत यात्रा

जहाज़ पर भोजन-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ आईं पर इन्होंने सदा प्रतिज्ञा का पालन किया। अंग्रेजी में कच्चे थे, फिर झेंपू स्वभाव के थे इसलिए लोगों से मिलने में डरते थे। खैर, किसी तरह विलायत पहुँचे। साथ में डा० प्राण-जीवन मेहता, श्री दलपतराम शुक्ल, प्रिंस रणजीत सिंह और दादाभाई नौरोज़ी के नाम परिचय-पत्र ले गये थे। डा० मेहता एवं श्री शुक्ल ने इंगलैंड के आचार-विचार एवं रीति-नीति से इन्हें परिचित कराया। होटल से हटाकर एंग्लो इंडियन कुटुम्ब में इन्हें रखा। इससे खर्च में कमी हुई। पर शुरू-शुरू में तो इन्हें सभ्य वनने की धुन सवार थी। विलकुल नये ढंग के फैशनेबुल कपड़े सिलवाये, नृत्य-कला सीखनी शुरू की तथा फ्रेंच और लैटिन पढ़ना भी आरम्भ किया।

विलायत में

उस समय लन्दन में निरामिष भोजनालय दो ही चार थे। और चूंकि इन्हें अपनी प्रतिज्ञा का सदा ध्यान वना रहता इसलिए ऐसे भोजनालय की खोज में रहते। कभी-कभी हाथ से भी वना लेते। यहीं अन्नाहार एवं फलाहार की श्रेष्ठता का विवेचन करने वाली कई अच्छी पुस्तकें इनके हाथ लगीं। इन्हें पढ़ कर अन्नाहार की उपयोगिता पर इनका विश्वास वढ़ता गया। तभी से भोजन-सम्बन्धी प्रयोगों की धुन इन पर सवार हुई

जीवन में परिवर्त्तन

...तक चली जाती है।

इस बात से दो अच्छे फल तो तुरन्त हुए। एक तो यह कि भोजन ...दगी आई और जो भोजन पहले शुष्क मालूम पड़ता था उसमें स्वाद आने लगा। दूसरे यह कि ज्यों-ज्यों अपने सम्बन्ध में ...ढ़ से विचार करते रहे त्यों-त्यों अपने जीवन में अधिकाधिक ...ी लाने एवं खर्च में कमी करने का भाव इनमें प्रबल होता ...। सवारी का खर्च इन्होंने घटा दिया और पैदल आना-जाना ...किया। इससे स्वास्थ्य भी सुधरा। केवल एक सस्ते कमरे में ...म चलाना शुरू किया। मिर्च मसाले इत्यादि का भी प्रयोग छोड़ ...था। इस प्रकार खाने पीने एवं कमरे के किराये का खर्च बहुत घट ...ा। इसके साथ ही इन्होंने पढ़ने में भी मन लगाया।

सादा भोजन के विषय में इनके अन्दर ऐसा उत्साह पैदा हुआ ... बेजवाटर मुहल्ले में (जहाँ उस समय रह रहे थे) इन्होंने एक ...हारी मंडल स्थापित किया। डा० ओल्डफील्ड को अध्यक्ष एवं ...र एडविन अर्नाल्ड को उपाध्यक्ष बनाया। और यह स्वयं मंत्री बने ...र यह संस्था न चली; कुछ ही महीनों में उसका अन्त हो गया। ...ोंकि यह उस मुहल्ले को छोड़कर दूसरे मुहल्ले में चले गये।[1]

असत्याचरण का अन्त

—विलायत में भारतीय विद्यार्थी के सामने अनेक प्रकार के प्रलोभन आते हैं। इन के सामने भी ऐसे अवसर आये। उन दिनों बहुतेरे विवाहित छात्र अपने को वहाँ अविवाहित ही बताते इससे उन्हें उन कुटुम्बों की युवती लड़कियों के साथ घूमने-फिरने एवं मनोविनोद की स्वच्छन्दता मिल जाती जिनमें वे रहते थे। उसी प्रवाह में यह भी बह गये। एक दिन ब्रायटन (समुद्र के किनारे हवाखोरी का स्थान) में लन्दन-

[1] अनुभव प्राप्त करने के ख्याल से इन्होंने यह नियम बना लिया था कि थोड़े-थोड़े समय में स्थान परिवर्तन करते रहना चाहिए।

सत्य प्रकाशित हुआ, उसके बीज हम इनमें देखते हैं और धीरे-धीरे उनके जीवन को सत्पथ पर बढ़ता पाते हैं। पर जिस बैरिस्टरी के लिए विलायत गये थे उसकी पढ़ाई भी जारी थी और फलस्वरूप १० जून १८९१ को यह बैरिस्टर हुए। ११ ता० को ढाई शिलिंग फीस दे कर इंगलैंड के हाईकोर्ट में अपना नाम रजिस्टर कराया और १२ जून को हिन्दुस्तान के लिए रवाना हुए।

बैरिस्टर

बम्बई आने पर डा० मेहता ने (जिनसे विलायत में परिचय हुआ था) अपने जिन सम्बन्धियों से मोहनदास का परिचय कराया उनमें से उनके बड़े भाई के दामाद रायचन्द भाई का उल्लेख करना यहां आवश्यक है। गांधी जी के जीवन पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। वैसे रायचन्द भाई हीरे-जवाहरात के व्यापारी थे। वह अच्छे कवि और शतावधानी थे। स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। पर व्यापार एवं संसार के अन्य कार्यों में लगे रहने पर भी उनमें आत्मदर्शन की तीव्र आकांक्षा थी; उनका शास्त्र-ज्ञान व्यापक और गंभीर था। उनका चरित्र निर्मल था। वह सदा अपने सम्बन्ध में जागरूक रहते और अनासक्त भाव से ही सब काम-काज करते थे। जिन तीन आदमियों—रायचन्द भाई, टालस्टाय और रस्किन[1]—का गांधी जी के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है उनमें रायचन्द भाई का स्थान सब से ऊँचा एवं महत्वपूर्ण है। इनके संसर्ग एवं सलाह से गांधी जी के जीवन की अनेक आध्यात्मिक गुत्थियाँ सुलझी हैं।

रायचन्द भाई से परिचय

× × ×

---

[1]टालस्टाय का 'हेवेन इज इन यू' (स्वर्ग तुम्हारे ही अंदर है) और रस्किन का 'अन-टू दिस लास्ट' (जिसका अनुवाद स्वयं गांधी जी ने 'सर्वोदय' नाम से किया) नामक पुस्तकों ने गांधी जी के जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला।

बैरिस्टर तो हो आये पर इनमें धड़ल्ले से बोलने एवं अपने तर्क और भाषण के द्वारा सब बातों को प्रभावशाली ढंग से अदालत के सामने रखने की शक्ति का सर्वथा अभाव था। संसार का अनुभव इनमें बिलकुल न था जो एक वकील की पूंजी है। किसी सभा में बोलने खड़े होते तो शरीर काँपने लगता। इधर घर का खर्च बहुत बढ़ गया। इसलिए मित्रों की सलाह से यह निश्चय हुआ कि बम्बई में जाकर कुछ दिन हाईकोर्ट में अनुभव प्राप्त करें। और एकाध मुकदमे मिल जायँ तो उन्हें भी लेते रहें। इसलिए घर से यह बम्बई के लिए रवाना हुए।

वकालत के मैदान में

बम्बई में एक ओर कानून का अध्ययन शुरू हुआ और दूसरी ओर भोजन के प्रयोग। कानून का अध्ययन चला तो पर जैसा चाहिए वैसा नहीं,—बहुत सुस्ती के साथ। बाहर बैरिस्टर की तख्ती टँगी रहती और अन्दर बैरिस्टर बनने की तैयारी चलती रहती। यह स्वयं लिखते हैं कि इस समय मेरी हालत ससुराल में आई हुई नई बहू-जैसी हो रही थी।

इसी समय एक मुकदमा इनके हाथ आया। मामला 'स्माल काज़ कोर्ट' में था। पहले दलाल ने दलाली माँगी;—इन्होंने इन्कार कर दिया। मामला आसान था; एक दिन से ज्यादा का काम उसमें न था। ३०) मेहनताना उसमें मिला था पर वह भी इनसे न सधा। अदालत में पैरवी करने गये। मुदालेह के वकील थे इसलिए इन्हें जिरह करनी थी। पर जब यह खड़े हुए तो पांव काँपने लगे; सिर घूमने लगा। ऐसा मालूम पड़ा मानों सारी अदालत घूम रही है। यह बैठ गये; दलाल से कहा—"तुम दूसरा वकील कर लो।" उस दिन से इन्होंने पूरी योग्यता प्राप्त किये बिना कोई मुकदमा हाथ में न लेने का निश्चय किया। इधर यह हाल था, उधर खर्च बढ़ता ही जाता था। अन्त में यहाँ से निराश हो ५-६ महीने बाद यह फिर राजकोट लौट आये।

राजकोट में आफिस खोला। वहाँ कुछ सिलसिला चला और अर्जियाँ लिखने का काम मिलने लगा। इससे लगभग २००) मासिक की आय होने लगी। ये अर्जियां भी इनकी योग्यता के कारण नहीं, भाई के प्रभाव से मिलती थीं।

× × ×

पहला आघात !

जब इस प्रकार सिलसिला चल रहा था तो इन्हें पहली बार अंग्रेजों की दोरंगी व्यवहार-नीति का अनुभव हुआ और दिल में ठेस लगी। बात यह थी कि पोरबन्दर के राणा साहब को गद्दी मिलने के पूर्व इन के भाई उनके मंत्री एवं सलाहकार थे। उस समय कुछ राज्याधिकारियों ने इनके भाई पर दोष लगाया कि वह राणा साहब को उलटी सलाह देते हैं। ये शिकायतें उस समय के पोलिटिकल एजेण्ट तक भी पहुँचाई गई और उसका रुख इनकी तरफ से खराब हो गया। गांधी जी की इस साहब से विलायत में मुलाकात हुई थी। और काफी परिचय हो गया था। इसलिए भाई ने चाहा कि वह जाकर उससे मिलें। यह बात उन्हें पसन्द तो न पड़ी पर भाई के जोर देने पर गये। वह लिखते हैं—"......मैंने पुरानी पहचान निकाली। परन्तु मैंने तुरन्त देखा कि विलायत और काठियावाड़ में भेद था। हुकूमत की कुर्सी पर डटे हुए साहब और विलायत में छुट्टी पर गये हुए साहब में भेद था। पोलिटिकल एजेण्ट को मुलाकात तो याद आई पर साथ ही अधिक बेरुखे भी हुए। उनकी बेरुखाई में मैंने देखा, उनकी आँखों में मैंने पढ़ा—उस परिचय से लाभ उठाने तो तुम यहां नहीं आये हो ? यह जानते-समझते हुए भी मैंने अपना सुर छेड़ा। साहब अधीर हुए—'तुम्हारे भाई कुचक्री हैं। मैं तुमसे ज्यादा बात सुनना नहीं चाहता। मुझे समय नहीं है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो बाकायदा अर्जी पेश करें।' यह उत्तर बस था; पर गरज बावली होती है। मैं अपनी बात कहता ही जा रहा था। साहब उठे। 'अब तुमको चला

हुए।'

कहा—पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।

लाल-पीले हुए—'चपरासी! इनको दरवाजे के बाहर

!' कह कर चपरासी दौड़ा आया। मेरा चलना अभी तक
हा था, चपरासी ने मेरा हाथ पकड़ा और दरवाजे से बाहर
।

घटना से अंग्रेजों की नीति एवं अपनी पराधीनता का इन्हें
वा अनुभव हुआ और इस आघात ने उनके जीवन की दिशा
बदलने में बड़ा काम किया।

अफ्रीका यात्रा

इधर यह घटना हुई, उधर काठियावाड़ का वातावरण इन्हें खलने लगा। वहाँ भीतर-भीतर नाना प्रकार के षड़यंत्र चला करते। साहब से लड़ाई होने के बाद वकालत का द्वार भी बन्द हो गया क्योंकि ज्यादातर मुकदमे इन्हीं की अदालत में होतें थे। भाई इन के लिए किसी नौकरी की तलाश में थे। इसी समय इनके भाई के पास पोरबन्दर की एक मेमन दुकान का सन्देश आया।..."दक्षिण अफ्रिका में हमारा व्यापार है। हमारी दुकान वड़ी हैं। वहां हमारा एक वड़ा मुक़दमा चल रहा है। चालीस हज़ार पौण्ड का दावा है। मामला बहुत दिनों से चल रहा है। हमारी तरफ वड़े-वड़े और अच्छे बैरिस्टर हैं। यदि अपने भाई को वहाँ भेज दें तो हमें भी मदद मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जायगी। वह हमारा मामला हमारे वकीलों को अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके अलावा नये देश की यात्रा भी होगी।" इस सम्बन्ध में दादा अब्दुल्ला के हिस्सेदार सेठ अब्दुल करीम से मिलने पर मालूम हुआ कि ज्यादा मेहनत का काम नहीं है। आने जाने का पहले दर्जे का किराया मिलेगा; घर के बँगले में जगह मिलेगी; खाना पीना भी मिलेगा और १०५ पौं० मिलेंगे। एक साल

का काम है। गांधी जी ने हामी भर ली और पहले दर्जे का टिकट ले अप्रैल १८६३ में जहाज से दक्षिण अफ्रीका को रवाना हुए।

दक्षिण अफ्रीका में

मई के अन्त में यह नेटाल के डरबन बन्दर पर उतरे। इन्हें लिवाने अब्दुल्ला सेठ आये थे। जहाज से उतरते ही लोगों के व्यवहार को देख समझ गये कि यहाँ हिन्दुस्तानियों का विशेष आदर नहीं है। अब्दुल्ला सेठ तो ऐसे व्यवहार के आदी हो गये थे। खैर; अब्दुल्ला सेठ के बंगले पर गये। सेठ ने अपने कमरे के पास ही इन्हें कमरा दे दिया।

एक घटना

दूसरे या तीसरे दिन अब्दुल्ला सेठ इन्हें डरबन की अदालत दिखाने ले गये और कई आदमियों से परिचय कराया। अदालत में अपने वकील के पास इन्हें बिठाया। मजिस्ट्रेट इन्हें कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखता रहा। फिर इन से पगड़ी उतार देने को कहा। इन्होंने इन्कार किया और उठ कर बाहर चले गये। यहाँ भी इनके भाग्य में लड़ाई ही लिखी थी।

पगड़ी वाली घटना को लेकर इन्होंने अखबारों में आन्दोलन शुरू किया। उन दिनों भारतियों को दक्षिण अफ्रीका में नीची निगाह से देखा जाता था (और वह बात तो आज भी है)। गांधी को भी अंग्रेज 'कुली बैरिस्टर' कहते। घटना को लेकर अखबारों में खूब चर्चा हुई। किसी ने पक्ष समर्थन किया; किसी ने भरपेट निन्दा की। इस प्रकार शीघ्र ही इनकी प्रसिद्धि दक्षिण अफ्रीका में हो गई।

परिचय

धीरे-धीरे लोगों से परिचय भी बढ़ता गया। डरबन के ईसाई भारतीयों के सम्पर्क में आये। डरबन अदालत के दुभाषिया श्रीपाल रोमन (जो कैथलिक थे) तथा प्रोटेस्टेण्ट मिशन के शिक्षक श्री गाडफ्रे से भी परिचय हुआ। पारसी रुस्तम जी और आदम जी मियां खान से भी जान-पहिचान हो गई।

ये लोग पहले आपस में बहुत कम मिलते थे पर इनके प्रयत्न से अब अक्सर मिलने लगे। इसी समय दुकान के वकील का एक पत्र आया कि मुकदमे की तैयारी के लिए या तो अब्दुल्ला सेठ को प्रिटोरिया जाना चाहिए या दूसरे किसी को वहाँ भेजना चाहिए। अब्दुल्ला सेठ ने गुमाश्तों को बुलाकर कहा कि गाँधी को सब मामला समझा दो। मामला समझ कर यह प्रिटोरिया जाने को तैयार हुए। जाते समय अब्दुल्ला सेठ से उन्होंने कहा कि यदि सम्भव हुआ तो मैं समझौता कराने का भी यत्न करूँगा। क्योंकि आप दोनों निकट के सम्बन्धी हैं अतः व्यर्थ वकीलों के घर भरना ठीक नहीं। एक वकील के मुँह से ऐसी बातें सुन कर सेठ को आश्चर्य हुआ पर इतने दिनों में वह गाँधी की प्रकृति को समझने लगे थे। इसलिए जरूरी बातें बता कर उन्होंने गाँधी को विदा किया और अपने वकील को उनके ठहरने का इन्तजाम कर देने के लिए पत्र भी लिख दिया।

रास्ते में अपमान

बैरिस्टर गाँधी के लिए रेल के पहले दर्जे का टिकट लिया गया था। सोने की जगह के लिए पाँच शिलिंग का एक और टिकट लेना पड़ता था। अब्दुल्ला सेठ के बहुत कहने पर भी इन्होंने सोने का टिकट न लिया। अब्दुल्ला सेठ ने चलते-चलते चेताया—"देखना, यह हिन्दुस्तान नहीं है। खुदा की मेहरबानी है। आप पैसे का ख्याल न करना और अपने आराम का सब इन्तजाम कर लेना।"

रात को ९ बजे ट्रेन नेटाल की राजधानी मेरीत्सबर्ग पहुँची। उस समय का सजीव वर्णन गाँधी जी ने अपनी 'आत्म-कथा' में किया है—"यहाँ सोने वालों को बिछौने दिये जाते हैं। एक रेलवे नौकर ने आकर पूछा—"आप बिछौना चाहते हैं?" मैंने कहा—'मेरे पास मेरा बिछौना है।' वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी ओर देखा। मुझे हिन्दुस्थानी देख कर चकराया। बाहर गया। और एक-दो कर्मचारियों को लेकर आया। किसी ने मुझसे

कुछ न कहा। अन्त को एक अफसर आया। उसने कहा—'चलो, तुमको एक दूसरे डब्बे में जाना होगा।' मैंने कहा—'पर मेरे पास पहले दरजे का टिकट है।' उसने उत्तर दिया—'परवा नहीं, मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें आखिरी डब्बे में बैठना होगा।'—"मैं कहता हूँ कि मैं डरबन से इसी डिब्बे में बिठाया गया हूँ और इसी में जाना चाहता हूँ।"

अफसर बोला—'यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना होगा नहीं तो सिपाही आकर उतारेगा।' मैंने कहा—'तो अच्छा, सिपाही आकर भले ही मुझे उतारे, मैं अपने आप न उतरूँगा।' सिपाही आया। हाथ पकड़ा और धक्का मार कर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे उतार लिया। मैंने दूसरे डब्बे में जाने से इन्कार किया। गाड़ी चल दी। मैं वेटिंगरूम में बैठा। हैंड बैग अपने साथ रक्खा। दूसरे सामान को मैंने हाथ न लगाया। रेलवे वालों ने सामान कहीं रखवा दिया। मौसम जाड़े का था। दक्षिण अफ्रिका में ऊँची जगह पर बड़े जोर का जाड़ा पड़ता था। मेरित्सबर्ग ऊँचाई पर था इससे खूब जाड़ा लगा। मेरा ओवरकोट मेरे सामान में रह गया था। सामान मांगने की हिम्मत न हुई कि कहीं फिर बेइज्जती न हो। जाड़े में सिकुड़ता और ठिठुरता रहा। कमरे में रोशनी न थी। आधी रात के समय एक मुसाफिर आया। ऐसा जान पड़ा मानों वह कुछ बात करना चाहता हो, पर मेरे मन की हालत ऐसी न थी कि बातें करता। मैंने सोचा, मेरा कर्तव्य क्या है?—'या तो मुझे अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए, या वापस लौट जाना चाहिए। अथवा जो बेइज्जती हो रही है, उसे बर्दाश्त कर प्रिटोरिया पहुँचूँ और मुकदमे का काम खतम करके देश चला जाऊँ। मुकदमे को अधूरा छोड़कर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझ पर जो बीत रही है वह तो ऊपरी चोट है; वह तो भीतर के महारोग का बाह्य लक्षण है। वह महारोग है—वर्ण-द्वेष। यदि इस गहरी बीमारी को उखाड़ फेंकने की सामर्थ्य हो तो

उसका उपयोग करना चाहिए। इसके लिए जो कुछ कष्ट-दुःख सहन करना पड़े सहना चाहिए। इन अन्यायों का विरोध उतनी हद तक करना चाहिए जिस हद तक उसका सम्बन्ध वर्ण-द्वेष दूर करने से हो। ऐसा संकल्प कर के मैंने जिस तरह हो दूसरी गाड़ी से आगे जाने का निश्चय किया। सुबह मैंने जेनरल मैनेजर को तार-द्वारा लम्बी शिकायत लिख भेजी। अबदुल्ला सेठ तुरन्त जेनरल मैनेजर से मिले। जेनरल मैनेजर ने अपने आदमियों का पक्ष तो लिया पर कहा कि मैंने स्टेशन-मास्टर को लिखा है कि गांधी को बिना खतरा मुकाम पर पहुँचा दो। अब्दुल्ला सेठ ने मेरित्सबर्ग के हिन्दू व्यापारियों को भी मुझसे मिलने तथा मेरा प्रबन्ध करने के लिए तार दिया तथा दूसरे स्टेशनों पर भी ऐसे तार दे दिये। इससे व्यापारी लोग स्टेशन पर मुझसे मिलने आये। उन्होंने अपने पर होने वाले अन्यायों का जिक्र मुझसे किया। और कहा कि आप पर जो कुछ बीता है वह कोई नई बात नहीं। पहले दूसरे दरजे में जो हिन्दुस्थानी सफर करते हैं उन्हें क्या कर्मचारी और क्या मुसाफिर दोनों सताते हैं। सारा दिन इन्हीं बातों के सुनने में गया। रात हुई। गाड़ी आई। मेरे लिए जगह तैयार थी। डरबन में सोने के लिए जिस टिकट को लेने से इन्कार किया था, वही मेरित्सबर्ग में लिया। ट्रेन मुझे चार्ल्स टाउन ले चली।"

जले पर नमक

पर इतने से ही अपमान की कथा पूरी न हुई। मोहनदास सुबह चार्ल्सटाउन पहुँचे। वहाँ से जोहान्सबर्ग तक उन दिनों ट्रेन न थी। घोड़ागाड़ी जाती थी और बीच में एक रात स्टैंडर्टन में रहना पड़ता था। बैरिस्टर मोहनदास के पास इस घोड़ागाड़ी का टिकट था। एक दिन पिछड़ जाने पर वह रद्द नहीं होता था। अब्दुल्ला सेठ ने भी घोड़ागाड़ी के अफसर को तार दे दिया था। पर उसने इन्हें अजनबी आदमी समझ कर कहा—"तुम्हारा टिकट तो रद्द हो गया है।" यह बहाना-मात्र था

और इसका मतलब यह था कि गोरे मुसाफिरों के साथ इन्हें न बैठाना पड़े तो अच्छा। घोड़ागाड़ी में बाहर की तरफ कोचवान के बायें-दायें दो जगहें थीं। उनमें से एक पर घोड़ा-गाड़ी कम्पनी का एक गोरा अफसर बैठता था। पर इन्हें गोरों के साथ न बैठाने की नीयत से वह स्वयं अन्दर बैठा और इनको बाहर बैठाया। इसमें गाँधी को अपमान का अनुभव तो हुआ पर उस समय झगड़ा करने से कोई लाभ न देख, वह वहीं बैठ गये।

पर आगे और अपमान बदा था। रात को ३ बजे के लगभग उस गोरे अफसर को बाहर (जहाँ यह बैठे थे) बैठ कर सिगरेट पीने की इच्छा हुई। उसने इन्हें पाँव रखने के तख्ते पर बैठने को कहा। यह अपमान इनसे सहन न हुआ। इन्होंने विरोध किया। इस पर उसने कई थप्पड़ मारे और हाथ पकड़ कर नीचे खींचने लगा। यह दृश्य देख कर अन्दर के यात्रियों को कुछ दया आई। उनके झिड़कने पर गुर्राता हुआ वह बैठ गया।

रात को स्टैण्डर्टन पहुँचे। वहाँ ईसा सेठ (इन्हें अब्दुल्ला सेठ ने तार दिया था) के आदमी आये थे। वे इन्हें दुकान पर ले गये। इन्होंने ईसा सेठ इत्यादि से सारी घटनाएँ सुनाईं। उन लोगों को दुःख हुआ। पर उन्होंने ऐसी कई घटनाएँ सुनाकर आश्वासन दिया। उसके बाद गाँधी ने घोड़ा गाड़ी कम्पनी के एजेण्ट को चिट्ठी लिखी। उसने संदेशा भेजा कि यहाँ से बड़ी घोड़ागाड़ी जाती है। आपको उसमें सब के साथ ही जगह दी जायगी। खैर, वहाँ से चलकर रात को जोहान्सबर्ग पहुँचे। स्टैण्ड पर मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन का आदमी तो आया पर इन्होंने उसे न पहचाना, न उसने पहचाना। वह लौट गया। यह एक होटल में पहुँचे पर मैनेजर ने कहा—"खेद है, सब कमरे भरे हुए हैं।" इसके बाद यह गाड़ी कर के सेठ कमरुद्दीन की दुकान पर आये और उनसे होटल की बात कही। वे लोग हँसे और इन्हें बताया कि 'गोरे लोग अपने होटलों में हमें जगह

नहीं देते। यहाँ वर्ण-द्वेष जबर्दस्त है। आप कल प्रिटोरिया जायँगे पर हम लोगों को पहले दूसरे दरजे का टिकट ही नहीं देते। आपको तीसरे दरजे में जाना पड़ेगा।" इन्होंने मँगा कर रेल के कायदे कानून देखे। उसमें ऐसी कोई रोक न मिली। तब इन्होंने पहले दरजे में ही जाने का निश्चय प्रकट किया। स्टेशन मास्टर को चिट्ठी लिखी कि "मैं बैरिस्टर हूँ,—सदा पहले दरजे में सफर करने का आदी हूँ। आशा है, मुझे टिकट मिल जायगा। मैं स्वयं स्टेशन पर आपसे मिलूंगा।"

उचित समय पर यह अंग्रेजी वेश-भूषा में स्टेशन पहुँचे। इनकी बातों से स्टेशन-मास्टर को दया आई। उसने इनके साथ सहानुभूति

बूँट पर बूँट

प्रकट की और इस शर्त पर टिकट दिया कि यदि रास्ते में गार्ड उतार दे तो आप रेलवे कम्पनी पर दावा न करें। यह धन्यवाद दे कर पहले दर्जे में जा बैठे। कुछ समय बाद गार्ड टिकट देखने आया और इन्हें देखते ही झल्लाया और असभ्य भाषा में तीसरे दर्जे में जाने के लिए कहने लगा। इन्होंने टिकट दिखाया, विरोध किया, पर उसने कहा—'टिकट है तो क्या? तुझे तीसरे दर्जे में बैठना पड़ेगा।' इस डब्बे में एक ही अंग्रेज यात्री थे। उन्होंने गार्ड को डाँटा और इनसे आराम के साथ बैठने को कहा। गार्ड यह कहता और भुनभुनाता हुआ चला गया कि 'तुझे कुली के साथ बैठना हो तो बैठ। मेरा क्या।'

राम-राम करते रात को आठ बजे प्रिटोरिया पहुँचे और एक अमेरिकन होटल में रात बिताई। दूसरे दिन अब्दुल्ला सेठ के वकील श्री बेकर से मिले और उनकी सहायता से ३५ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक बाई के घर रहने का इन्तजाम हो गया। यह बेकर साहब कट्टर पादरी भी थे। इनका एक प्रार्थना-समाज था। श्री बेकर ने ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने के विचार से इनको भी उसमें बुलाया। गाँधी की मुक्ति और मार्ग-प्रदर्शन के लिए सब ने प्रार्थना की। धीरे-धीरे यहाँ कुमारी हैरिस, गेब एवं मि० कोट्स से परिचय

हुआ। दोनों महिलाएँ साथ रहती थीं। उन्होंने हर रविवार को ४ बजे चाय पीने के लिए अपने यहाँ निमंत्रित करना शुरू किया। ये सब गाँधी को ईसाई बनाने के फेर में थे। श्री कोट्स ईसा एवं ईसाई धर्म सम्बन्धी अनेक पुस्तकें इन्हें पढ़ने को देते।

प्रिटोरिया के भारतीयों में सेठ तैय्यब हाजी खान मुहम्मद की बड़ी प्रतिष्ठा थी। नेटाल में जो स्थान दादा अब्दुल्ला का था वही प्रिटोरिया में उनका था। उनके बिना वहाँ कोई सार्वजनिक काम न हो सकता था। गाँधी ने उनसे पहले ही सप्ताह में परिचय कर लिया। और भारतीयों की स्थिति को समझने में उनसे मदद माँगी। उन्होंने खुशी से सहायता देना स्वीकार किया।

भारतीयों से परिचय

उनकी तथा अन्य भारतीयों की सहायता से इन्होंने भारतीयों की एक सभा की जिसमें उन्हें समझाया कि 'व्यापार में भी सत्य को न छोड़ना चाहिए। विदेश में आपको देख कर, भारतीय सभ्यता का अन्दाज लगाया जाता है इसलिए आपकी जिम्मेदारी और भी बड़ी है।' इसके अलावा इस सभा में गंदगी दूर करने और हिन्दू, मुसलमान, गुजराती, ईसाई, पारसी, मद्रासी आदि का भेद भुला देने की भी अपील की। और सुझाया कि एक मंडल की स्थापना करके भारतीयों के दुःख-कष्ट का उपाय अधिकारियों से मिल कर एवं प्रार्थनापत्र इत्यादि के द्वारा करना चाहिए। इसके लिए अपना समय भी देने का वचन दिया। लोगों को अंग्रेजी पढ़ने की सलाह दी और इसके लिए अपनी सेवाएँ भी देने को तैयार हुए। कुछ लोग तैयार हो गये और इस दिशा में थोड़ा-बहुत काम हुआ।

बाद में नियमित रूप से भारतीयों की सभा होने लगी। इसमें परस्पर सलाह-मशविरे होते। धीरे-धीरे प्रिटोरिया के प्रायः समस्त भारतीयों से इनका परिचय हो गया। भारतीयों की स्थिति का भी पूरा ज्ञान हुआ। ब्रिटिश एजेण्ट से मिले; उन्होंने आश्वासन दिया।

रेलवे अधिकारियों से भी गाँधी ने लिखा-पढ़ी की और उन्हें दिखाया कि हिन्दुस्तानियों की यात्रा में जो रुकावटें की जाती हैं वे उनके ही नियमों के अनुसार बेजा हैं। इसके उत्तर में पत्र मिला कि साफ-सुथरे और अच्छे कपड़े पहनने वाले भारतीयों को ऊपर के दर्जे के टिकट दिये जायँगे। इससे समस्या हल तो न हुई पर कुछ सुविधा हुई।

× × ×

भारतीयों की दुर्दशा

'आरेंज फ्री स्टेट' में १८८२ के पहले एक कानून बना कर भारतीयों के तमाम अधिकार छीन लिये गये थे, सिर्फ होटल में 'वेटर' बन कर रहने या इसी प्रकार की छोटी मेहनत-मजदूरी करते रहने का अधिकार रह गया था। भारतीय व्यापारियों को नाम-मात्र का मुआवजा देकर वहाँ से हटा दिया गया था। उनके आवेदन-पत्र रद्दी की टोकरी में फेंक दिये गये थे। इसी प्रकार १८८५ में ट्रांसवाल में भी कड़ा कानून बनाया गया, विरोध करने पर १८८६ में उसमें कुछ सुधार हुआ और नियम बना कि प्रवेश फी के तौर पर प्रत्येक हिन्दुस्तानी तीन पौंड दे। उनके लिए जमीन पर मालकी पाने का अधिकार कुछ निश्चित हिस्सों में ही रक्खा गया। पर व्यवहार में ये सुविधाएँ भी न मिलती थीं। मताधिकार किसी को कुछ न था। भारतवासी 'फुट-पाथ' (पगडंडी) पर न चल सकते थे, रात को ६ बजे के बाद बिना परवाने के बाहर न निकल सकते थे।

इधर गाँधी रात को देर तक कोट्स के साथ घूमते थे। इससे पुलिस से झड़प होने का डर रहता ही था इसलिए श्री कोट्स ने इन्हें सरकारी वकील डा० क्राउजे से मिलाया। वह और गाँधी एक ही 'इन' के बैरिस्टर निकले। यह बात कि ६ बजे रात के बाद निकलने के लिए गाँधी को परवाने की जरूरत है, उन्हें अनुचित मालूम पड़ी और उन्होंने अपनी तरफ से एक पत्र दे दिया कि पत्र-वाहक को हर समय कहीं भी जाने का अधिकार है, पुलिस इन्हें न रोके। डा०

क्राउजे एवं उनके भाई (जो जोहान्सबर्ग के पब्लिक प्रासिक्यूटर थे) से धीरे-धीरे अच्छा परिचय हो गया। पर इतने से ही इनकी समस्या हल न हुई। यह तो उनके साथ एक खास रियायत हुई थी। भारतीयों की समस्या इससे हल न होती थी इसलिए रातदिन वह उसे सुलझाने में व्यग्र रहते थे।

मुकद्दमे में समझौता

जिस मामले को लेकर यह दक्षिण अफ्रीका आये थे, उसका इन्होंने गहरा अध्ययन किया। दोनों पक्ष के काग़ज़-पत्र देखे। इससे इन्हें निश्चय हो गया कि उनके मुवक्किल का पक्ष बहुत मज़बूत है पर इन में स्वार्थ-भाव तो था नहीं; यह दोनों पक्षों का हित चाहते थे। मुक़दमे का खर्च इतना बढ़ रहा था और परस्पर मनोमालिन्य दिन-दिन इस प्रकार बढ़ता जाता था कि दोनों पक्ष शान्ति के साथ दूसरा काम न कर पाते थे। उन्होंने देखा कि मुक़दमे में दोनों पक्ष उजड़ जायँगे। इसलिए यह विपक्ष के तैयब सेठ से मिले; उन्हें बहुत समझाया। अन्त में मामला पंचायत में गया; वहाँ जो फैसला हुआ उसे दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। इस सफलता से गांधी को बड़ी प्रसन्नता हुई। इन्होंने समझ लिया कि वकील का काम टके कमाना नहीं, दोनों पक्षों के बीच पड़ी खाई को पाट देना है। यह निष्कर्ष इन के जीवन में अंकित हो गया और जब वकालत की इसे न भुलाया। इससे न नैतिक और न आर्थिक दृष्टि में यह घाटे में रहे।

× × ×

धार्मिक मंथन

इधर बेकर तथा अन्य ईसाई मित्र इन्हें ईसाई बनाने पर तुले हुए थे। पर उनकी बताई धर्म की अनेक बातों पर इन्हें शंका होती थी। यह ईसा को महात्मा मानते थे पर चमत्कारी जीव न मान सकते थे। और न यही मान सकते थे कि वही ईश्वर के एक-मात्र पुत्र हैं। इधर हिन्दू धर्म की कई दुर्नीतियों के विषय में भी इनका संशय बढ़ रहा था। इसे दूर करने

के लिए इन्होंने रायचन्द भाई की शरण ली। उन्होंने इन्हें धीरज के साथ हिन्दू धर्म का अध्ययन करने की सलाह दी और लिखा कि 'हिन्दू धर्म में जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार हैं, जो आत्म-निरीक्षण और दया है वह दूसरे धर्म में नहीं।' उधर मेटलैण्ड, एना किंग्सफर्ड एवं टालस्टाय के साहित्य से ईसाई धर्म-सम्बन्धी इनकी समस्याओं को पुष्टि मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-धर्म पर धीरे-धीरे इनकी श्रद्धा बढ़ चली और आगे जाकर उसके आन्तरिक रहस्यों का भी इन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। पर ईसाई एवं मुसलमान धर्म की कई बातों का इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इसलिए इनमें पर-धर्मों के प्रति भी आदर का ही भाव रहा और आज तो वह बहुत बड़े परिमाण एवं दिव्य रूप में वर्तमान है।

× × ×

दोनों दलों में समझौता हो जाने के बाद वह डरबन गये और वहाँ से भारतवर्ष लौटने की तैयारी की। अब्दुल्ला सेठ ने एक 'फेयरवेल पार्टी' (विदाई का जलसा) दी। उसी समय, पास रखे हुए अखबार के एक कोने में एक समाचार की ओर इनका ध्यान एकाएक आकर्षित हुआ। शीर्षक था—हिन्दुस्तानी मताधिकार (इंडियन फ्रेंचाइज)। और समाचार यह था कि नेटाल की धारा-सभा के सदस्यों को चुनने का जो अधिकार हिन्दुस्तानियों को है वह छीन लिया जाय। इसके लिए एक कानून का मसविदा (बिल) धारा-सभा में पेश था और उस पर चर्चा हो रही थी। इन्होंने देखा कि इस बिल-द्वारा भारतीयों का अस्तित्व ही मिटा डालने का इरादा किया जा रहा है। ये बातें इन्होंने जलसे में आये हुए लोगों को समझाईं। उन लोगों ने अनुरोध किया कि यदि आप यहाँ एकाध महीना रह जायँ तो जैसा कहें लड़ने को हम लोग तैयार हैं। इन्होंने ठहरने का निश्चय कर लिया और वह विदाई का जलसा विचार-समिति के रूप में बदल गया।

ठहर गये !

सब से पहले हाजी मुहम्मद दादा के सभापतित्व में अब्दुल्ला सेठ के मकान पर एक सभा की गई। इस सभा में नेटाल में जन्मे सभी प्रकार के हिन्दुस्तानी—ईसाई भी—बुलाये गये थे। डरबन के अदालत के दुभाषिये श्री पाल और मिशन स्कूल के हेडमास्टर श्री गाडफ्रे तथा उनके साथ बहुतेरे ईसाई नवयुवक आये थे। प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यापारी मौजूद थे। इस सभा में फ्रेंचाइज बिल के विरोध का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और लोगों ने स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखवाया। धारा सभा के अध्यक्ष, मुख्य प्रधान सर जान राबिंसन और मि० एस्कम्ब को तार दिये गये कि वे बिल पर आगे विचार स्थगित कर दें। तार का जवाब मिला कि बिल पर चर्चा दो दिनों तक स्थगित रहेगी। इससे लोगों को खुशी हुई। दरखास्त का मसविदा तैयार हुआ। उसकी तीन प्रतियाँ भेजी जाने को थीं। एक प्रति अखबारों के लिए भी तैयार करनी थी। उस पर अधिक से अधिक सहियाँ लेनी थीं। और यह सब काम रात भर में करना था। व्यापारी तथा दूसरे स्वयंसेवक रात भर जगे। दरखास्त गई; अखबारों में छपी। उस पर अनुकूल टिप्पणियाँ भी हुईं। धारा-सभा में भी उसकी खूब चर्चा हुई। किन्तु इतने पर भी बिल तो पास हो ही गया।

भारतीयों में जागृति का आरम्भ

यह तो होना ही था पर इतने आन्दोलन से हिन्दुस्तानियों में नया जीवन आ गया। भेद-भाव मिट गये। सबने समझा कि हम सब का समाज एक है, हम सब हिन्दुस्तानी हैं और राष्ट्रीय अधिकारों के लिए मिल-जुल कर लड़ना हमारा धर्म है।

प्रार्थनापत्र और प्रचार

बिल पास होने के बाद यह निश्चय किया गया कि एक भारी दरख्वास्त लिख कर अधिक से अधिक सहियों के साथ उपनिवेश-मंत्री लार्ड रिपन को भेजी जाय। काम शुरू हुआ। दरख्वास्त पर लगभग दस हजार आदमियों के हस्ताक्षर हुए। उसकी एक हजार कापियाँ छपाकर

हिन्दुस्तान के अखबारों एवं नेताओं के पास भेजी गई। विलायत में भी उसकी नकलें सब दल के नेताओं के पास भेजी गईं। भारत में 'टाइम्स ऑव इंडिया' तथा इंग्लैंड में 'टाइम्स' जैसे पत्रों ने उसका समर्थन किया। इससे बिल के स्वीकृत न होने की आशा बँधी। अब लोगों ने इन पर वहीं रह जाने के लिए जोर डालना शुरू किया। पर खर्च का क्या हो ? लोगों ने इनका सारा व्यक्तिगत खर्च उठाने का अश्वासन दिया पर इन्होंने सार्वजनिक सेवा के लिए निजी सहायता लेना अस्वीकार कर दिया। अन्त में प्रस्ताव हुआ कि मुकदमे दिलाने का प्रबंध कर दिया जाय और उससे यह अपना खर्च निकाल लें। सब को यह बात स्वीकार हुई और यह वहीं रह गये।

टिकने के बाद नेटाल की अदालत में वकालत की सनद के लिए दरख्वास्त दी। उस समय वर्ण-द्वेष इतना जबर्दस्त था और गोरे भारतीयों को इतनी हिकारत की निगाह से देखते थे कि वकील-सभा ने इनकी दरख्वास्त का बड़ा विरोध किया पर अदालत ने उनका विरोध न मान कर वकीलों की सूची में इनका नाम लिख दिया। वकील-सभा के विरोध ने इनके लिए विज्ञापन का काम किया। कितने ही अखबारों ने इनके खिलाफ उठाये गये विरोध की निन्दा की और वकीलों पर ईर्ष्या का इलजाम लगाया। इस प्रसिद्धि से इनका आगे का काम सरल हो गया।

वकालत

पर वकालत की व्यवस्था तो जीविका के लिए थी। असल काम तो भारतीयों की सेवा और संघटन का था। इसके लिए मई १८९४ में 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना हुई। इस में समय पर लोग इकट्ठे होते, परस्पर चर्चा एवं विचार—विनिमय होता। प्रचार के उद्देश्य से गांधी ने दो पुस्तिकाएं लिखीं। पहली में दक्षिण अफ्रीका के प्रत्येक अंग्रेज से अपील की गई थी और भारतीयों की स्थिति बताई गई थी। दूसरे में भारतीय मताधिकार के लिए अपील थी। इनका अच्छा असर

'नेटाल इण्डियन कांग्रेस की स्थापना

हुआ। कई अंग्रेजों की सहानुभूति इस कार्य में प्राप्त हुई तथा हिन्दुस्थान में सब दलों की ओर से मदद मिली।

इसी सिलसिले में 'कोलोनियल बार्न इंडियन एजूकेशनल असोसियेशन' (उपनिवेश में पैदा हुए भारतीयों की शिक्षा समिति) की स्थापना हुई। यह एक प्रकार की वाद-विवाद सभा थी। इस में युवक मिलते रहते; भाषण होते, निबंध पढ़े जाते। एक छोटा पुस्तकालय भी इसके लिए खोल दिया गया था।

× × ×

मजदूरों से सम्पर्क

नेटाल इंडियन कांग्रेस का आरम्भ तो हुआ पर अभी तक उसमें बड़े-बड़े व्यापारी, क्लर्क या शिक्षित युवक ही शामिल थे। मजूर या गिरमिटिया (जो एग्रीमेण्ट करके मजूरी के लिए लाये गये हों—'एग्रीमेण्ट' से बिगड़ कर ही 'गिरमिटिया' शब्द बन गया) न आये थे। पर ईश्वर की कृपा से ऐसा अवसर अपने आप आया। एक दिन बाल सुन्दरम नामक एक मद्रासी गिरमिटिया रोता पीटता इनके पास आया। उसके मुँह से खून बह रहा था। उसके गोरे मालिक ने उसे इतनी बेदर्दी से पीटा था कि उसके दो दाँत टूट गये थे। गाँधी जी ने डाक्टर से सर्टीफिकेट लेकर मामला अदालत में भेज दिया। मजिस्ट्रेट ने मालिक को तलब किया पर गाँधी जी उसे सजा दिलाना न चाहते थे। वह सिर्फ उस नौकर को उस गोरे की गुलामी से छुड़ाना चाहते थे। उस समय के कानून के अनुसार बिना उसकी रजामंदी के या बिना गिरमिटिया अफसर-द्वारा लाइसेंस रद्द हुए वह नौकरी न छोड़ सकता था। यह उस गोरे से मिले; वह तो सजा से बचना चाहता ही था इसलिए उसने इनकी बात मंजूर कर ली। इन्होंने बाला सुन्दरम को एक दूसरे अंग्रेज के यहां नौकर रखवा दिया। इस घटना से गिरमिटियों में खूब हलचल फैली। गाँधी के दफ़्तर में उनकी भीड़ रहने लगी और इन्हें उनके सम्पर्क में आने का मौका मिला।

इसी समय एक दूसरी समस्या आ खड़ी हुई। १८९४ में नेटाल सरकार ने गिरिमिटिया भारतीयों पर प्रति वर्ष २५ पौ० (३७५ रु०) का कर लगाने का बिल तैयार किया।[1] यह अन्याय की सीमा थी। उधर भारत के वायसराय लार्ड एलगिन के सामने जब नेटाल-सरकार ने यह तजवीज रक्खी तो उन्होंने २५ पौण्ड घटाकर ३ पौण्ड कर दिया। यह ३ पौण्ड भी इन मजूरों के लिए बहुत था। इसलिए आन्दोलन शिथिल न हुआ और आगे जाकर उसने सत्याग्रह

---

[1] असल में यह सब भारतीयों को दक्षिण-अफ्रीका से नेस्त-नाबूद करने की योजना थी। बात यह है कि १८६० के लगभग जब गोरों ने देखा कि नेटाल में गन्ने की अच्छी खेती हो सकती है तो भारत सरकार से लिखा-पढ़ी कर के हिन्दुस्तानी मजूरों को नेटाल ले जाने की इजाज़त प्राप्त की। उन्हें लालच दिया कि पाँच साल तक तुम्हें हमारे यहाँ काम करना पड़ेगा, बाद में आज़ाद हो; शौक से नेटाल में रहो। उन्हें जमीन की मालकी का पूरा हक था। भारतीय कुलियों ने परिश्रम से नेटाल की भूमि को हरा-भरा कर दिया। तरह-तरह की शाक-तरकारियाँ बोईं; आम लगाये; दूसरे फल पैदा किये। उन्होंने जमीनें खरीदीं; बाद में व्यापार भी करने लगे। इससे गोरे व्यापारी चौंके। वे व्यापार में भारतीयों की प्रतिद्वन्द्विता सहन न कर सकते थे। इसलिए एक ओर मताधिकार छीन लेने और दूसरी ओर कर लगाने के रूप में यह विरोध प्रकट हुआ। कर वाले बिल की मुख्य धाराएँ ये थीं—

(१) मजदूरी का इक़रार पूरा होने पर गिरमिटिया हिन्दुस्तान लौट जाय।

(२) दो दो वर्ष की गिरमिट (एग्रीमेण्ट) नये सिरे से करता रहे, और ऐसी हर गिरमिट में उसके वेतन में कुछ वृद्धि होती रहे।

(३) यदि भारत वापस न जाय और फिर मजूरी का इक़रार भी न करे तो हर साल २५ पौण्ड का कर दे।

का वह रूप धारण किया जो प्रवासी भारतीयों के इतिहास में अत्यन्त गौरवपद स्थान पायेगा।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी का काम बढ़ता ही जाता था इसलिए उन्होंने स्त्री-पुत्र को भी वहाँ लाने का निश्चय किया। साथ ही भारत

भारत में

में ३ पौण्ड के कर के बारे में भी आन्दोलन करना था। इसलिए १८९६ के मध्य में यह 'पँगोला' जहाज से कलकत्ते को रवाना हुए। कलकत्ते से बम्बई जाते समय प्रयाग में 'पायोनियर' के सहायक सम्पादक श्री चेजन जी से मिले। यद्यपि 'पायोनियर' साधारणतः भारतीय आकांक्षाओं का विरोधी था। परन्तु सम्पादक ने वचन दिया कि 'जो कुछ आप लिखेंगे, मैं उसपर तुरन्त टिप्पणी करूँगा।' इसके बाद यह बम्बई होते हुए राजकोट गये। वहाँ एक पुस्तक लिखी जिसमें दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति का चित्र था। आवरण पृष्ठ हरे रंग का होने के कारण यह 'हरी पुस्तक' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसकी दस हजार प्रतियाँ छपवाई गई थीं और भारत के प्रायः सभी समाचारपत्रों एवं प्रतिष्ठित आदमियों के पास भेजी गई थीं। 'पायोनियर' ने सब से पहले उसपर लेख प्रकाशित किया जिसका असर विलायत एवं नेटाल में भी हुआ। प्रायः सभी पत्रों ने टीका-टिप्पणी की।

इसके बाद बड़े-बड़े शहरों में इस सम्बन्ध में सभा करने के उद्देश्य से यह बम्बई गये। वहां जस्टिस रानडे एवं बद्रुद्दीन तैयबजी

आन्दोलन एवं प्रचार

से मिले। उन्होंने सहानुभूति प्रकट की पर सार्वजनिक कार्यों में भाग ले सकने की अपनी विवशता बताई और सर फीरोजशाह मेहता से मिलने की सलाह दी। यह उनसे मिले। उन्होंने सब बातें सुन कर सभा का दिन निश्चय किया। गाँधी जी ने सभा के एक दिन पहले, फीरोजशाह के अनुरोध से, अपना भाषण लिखा; रातों रात वह छपवाया गया। दूसरे दिन सभा हुई; उपस्थिति अच्छी थी। उसका

अच्छा प्रभाव पड़ा। वहां से पूना गये। वहां दो दल थे—लोकमान्य का और गोखले इत्यादि का। यह लोकमान्य, गोखले सब से मिले। सब की राय से तटस्थ आदमी को अध्यक्ष बनाने की बात तय हुई और सर रामकृष्ण भंडारकर ने इसके लिए इनका अनुरोध स्वीकार कर लिया।

पूना से वह मद्रास गये। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों में सदा से ही मद्रासियों की संख्या अधिक रही है। इसलिए मद्रास में तो बड़ा उत्साह पैदा हुआ। वहां उस 'हरी पुस्तक' की १० हजार प्रतियां और छपाई गईं। 'मद्रास स्टैण्डर्ड' पत्र ने इस कार्य में बड़ी सहायता दी।

मद्रास से वह कलकत्ता गये। वहां सुरेन्द्रनाथ, राजा सर प्यारी-मोहन मुकर्जी एवं टैगोर से मिले। पर इन लोगों ने कुछ ध्यान न दिया। 'अमृत बाजार पत्रिका' एवं 'बंगवासी' वालों ने तो अपमान-जनक व्यवहार भी किया। पर जहां हिन्दुस्तानी क्षेत्र में सहायता न मिली, वहां अंग्रेजों की सहायता सहज ही प्राप्त हुई। 'स्टेट्समैन' एवं 'इंग्लिशमैन' के सम्पादकों से मिले। इन्होंने अपने पत्रों में इनके साथ हुई लम्बी बातचीत छापी। 'इंग्लिशमैन' के श्री साण्डर्स ने तो कहा कि आप मेरे पत्र का यथेच्छ उपयोग कर सकते हैं। उन्होंने अपने अग्रलेख में कमी-वेशी करने की भी छूट इन्हें दे दी। उन्होंने सदा अपना वादा निबाहा।

जब यह इस प्रकार प्रचार-कार्य में लगे हुए थे तब एक दिन इन्हें डरबन से तार मिला—"पार्लमेण्ट की बैठक जनवरी में होगी, जल्दी आइए।" इसलिए अखबारों में अपने दक्षिण-अफ्रीका लौटने की सूचना छपाकर कलकत्ता से राजकोट आये। और दादा अब्दुल्ला के एजेण्ट को तार दिया कि पहले जहाज से जाने का इन्तजाम करें। दादा अब्दुल्ला ने स्वयं 'कुरलैंड' जहाज खरीद लिया था। इसी जहाज से

फिर दक्षिण अफ्रीका की ओर

१८९६ ई० के दिसम्बर के आरम्भ में अपनी धर्म-पत्नी, दो बच्चों एवं स्वर्गीय बहनोई के एकलौते पुत्र को लेकर यह दूसरी बार दक्षिण-अफ्रीका को रवाना हुए। इस जहाज के साथ 'नादरी' नामक एक और भी जहाज था; जिसके एजेण्ट दादा अब्दुल्ला थे। इनमें लगभग ८०० यात्री थे।

१८ या १९ दिसम्बर को दोनों जहाज डरबन बन्दर पर पहुँचे। लंगर डाला। उन दिनों बन्दरगाहों पर यात्रियों की कड़ी डाक्टरी जाँच होती थी। इन जहाजों पर भी डाक्टर आये। जाँच की और कहा—"अभी मुसाफिर पांच दिन जहाज पर ही रहेंगे क्योंकि बम्बई से चलते समय सम्भव है ये प्लेग के कीटाणु साथ लाये हों। इस के लिए २३ दिन तक सूतक रखना ही चाहिए। अभी १८ ही दिन हुए हैं।"

गोरों का तूफानी विरोध

परन्तु यह सब तो बहाना था। असल बात तो यह थी कि गांधी के भारत में किये आन्दोलन की अधूरी खबरें पढ़-पढ़ कर गोरे बिगड़ खड़े हुए थे। जगह जगह उनकी बड़ी सभाएं हो रही थीं। वे दादा अब्दुल्ला को धमकियाँ दे रहे थे। जहाज भारत को लौटा देने पर उस का सारा खर्च देने को तैयार थे। यात्रियों को भी धमकियां दी जा रही थीं। उनका कहना था कि गांधी ने हिन्दुस्तान में हमारी अनुचित निन्दा की है। दूसरे वह नेटाल को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहता है इसलिए इतने आदमी जहाज में भर लाया है। पर ये दोनों बातें झूठी थीं। इसलिए गांधी अविचल रहे और मुसाफिरों को ढाढ़स बँधाया। अन्त को बहुत दिनों के बाद १३ जनवरी को मुसाफिरों को उतरने की आज्ञा मिल गई। मुसाफिर उतरे पर सरकारी वकील श्री एस्कंब ने कप्तान को कहला दिया कि गांधी तथा उनके बाल-बच्चों को शाम को उतारना क्योंकि गोरे इस समय बहुत बिगड़े हुए हैं। और उनकी जान का खतरा है। पर बाद में दादा अब्दुल्ला के वकील

श्री लाटन आये और उन्होंने कहा कि इस प्रकार चुप-चुप जाना उचित न होगा, फिर गोरे भी बिखर गये हैं। उनकी सलाह से गांधी ने धर्मपत्नी एवं बच्चों को गाड़ी में रुस्तम सेठ के घर भेजा। और स्वयं श्री लाटन के साथ पैदल चले।

पर कुछ छोकरों ने इन्हें पहचान लिया और 'गांधी गांधी' चिल्लाने लगे। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गई। उसमें श्री लाटन अलग पड़ गये और इन पर कंकड़ और सड़े अंडे बरसने लगे। बाद में किसी ने पगड़ी गिरा दी और लातों एवं थप्पड़ों की मार शुरू हुई। गांधी को चक्कर आने लगा। इतने में ही पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट श्री अलेक्जेण्डर की पत्नी उधर से निकलीं। वह इन्हें पहचानती थीं। देखते ही इनके पास आ गई एवं अपना छाता इन पर तान दिया। इससे भीड़ कुछ रुकी। इसी समय, किसी हिन्दुस्तानी के खबर देने पर पुलिस की एक टुकड़ी इनकी रक्षा के लिए आ गई। उसकी हिफाजत में यह पारसी रुस्तम जी के घर पहुँचे। वहां इनका इलाज किया गया। पर गोरे तो बहुत उत्तेजित हो गये थे। उन्होंने घर को घेर लिया। मौका बेढब देख पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री अलेक्जेण्डर वहां पहुँच गये और इन्हें गुप्त संदेशा भेजा कि इस समय आप वेश बदल कर घर से निकल जायँ; नहीं तो आपके साथ आपके मित्र के जानोमाल का भी खतरा है। ऐसा ही किया गया। यह वेश बदल कर थाने में चले गये। पीछे शिकार निकल जाने की बात मालूम होने पर भीड़ तितर-बितर हो गई।

मार

इस घटना के बाद स्व० चेम्बरलेन ने नेटाल सरकार को तार दिया कि गांधी पर हमला करने वालों पर मुकदमा चलाया जाय। श्री एसकम्ब ने इन्हें बुला कर यह संदेशा दिया। पर गांधी ने कहा—'इसमें बेचारे गोरों का क्या दोष है? वे झूठी खबरों से उत्तेजित किये गये थे। जब उन्हें अपनी भूल मालूम होगी तो आप पश्चात्ताप करेंगे। मैं उन पर मुकदमा नहीं

क्षमा-भाव

चलाना चाहता।' इसी आशय का पत्र भी लिख कर इन्होंने दे दिया। इस स्थान पर उन्होंने अपनी अहिंसा एवं क्षमा-वृत्ति का अपूर्व परिचय दिया। और इसका अँग्रेजों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। गोरों को शर्मिन्दा होना पड़ा। अखबारों ने गाँधी को निर्दोष बताया और हुल्लड़कारियों की निन्दा की। इससे हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा भी बढ़ी और आगे का रास्ता सरल हो गया।

तीन-चार दिन में फिर सब काम-काज ठीक तौर से चलने लगा। यह घर आ गये। इस घटना के कारण इन की वकालत भी चमक गई। परन्तु इससे जहां हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ी वहां इनके प्रति गोरों का भय और रोष बढ़ गया। इसी समय नेटाल की धारा-सभा में दो और बिल पेश हुए।

दो बिल

इनमें से एक से भारतीयों के व्यापारधन्धे को गहरी हानि पहुँचने वाली थी और दूसरे से इनके नेटाल आने जाने में बाधा पड़ती थी। उनकी भाषा तो ऐसी गोल-मोल थी कि सब पर लागू होती दीखती थी। पर असल में ये बिल हिन्दुस्तानियों को दबाने के लिए ही बनाये गये थे। इस सम्बन्ध में भी गाँधी ने बहुत आन्दोलन किया। विलायत तक मामला गया पर बिल तो स्वीकृत हो ही गये।

इन झगड़ों के कारण जो जागृति हुई थी उससे 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' का कार्य खूब बढ़ गया। रुपये भी काफी आ गये और उसका अपना मकान भी हो गया। ज्यों-ज्यों कार्य बढ़ता गया, इनका अधिक समय सार्वजनिक कामों में जाने लगा इससे तथा धार्मिक चिंतन से इनके अन्दर यह भाव पैदा हुआ कि सेवा एवं विषयासक्ति में घोर विरोध है। इसलिए पति-पत्नी सम्बन्ध में दिन-दिन विषय-भोग को हटाने की ओर इनका ध्यान गया और इधर प्रयत्नशील हुए। इसी सिलसिले में भोजन में भी सादगी लाने का निश्चय हुआ क्योंकि ब्रह्मचर्य का अस्वाद से घनिष्ट सम्बन्ध है। उसके साथ ही स्वालम्बन का भाव भी

दाम्पत्य जीवन में पवित्रता

।। और धोबी नाई इत्यादि का काम घर में ही अपने हाथों कर
ने का भाव पैदा हुआ। इस तरह एक ओर सार्वजनिक सेवा की
दूसरी ओर पवित्रता एवं सादगी को जीवन में प्रधानता मिलने
गी। डा० बूथ की देखरेख में दो घण्टे रोज नियमित रूप से रोगियों
ी दवा देने इत्यादि का काम भी करने लगे। इससे रोगियों की सेवा
एवं परिचर्या-प्रणाली का इनको अच्छा अनुभव हुआ। जो आगे चल
र इनके कार्य में सहायक हुआ।

बोअर युद्ध

इसी समय (१८९७—९९) बोअर[1] युद्ध छिड़ गया। अब तक ब्रिटिश शासन की न्याय-पूर्णता में गांधी का विश्वास बना था। इसलिए जितने साथी मिल सके उनको लेकर घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने वाली एक टुकड़ी इन्होंने तैयार की। डा० बूथ ने आवश्यक

---

[1]सोलहवीं शताब्दी तक दक्षिण-अफ्रीका में विदेशियों का प्रवेश न हुआ था। सोलहवीं शताब्दी में डच लोग पहली बार दक्षिण-अफ्रीका आये। धीरे-धीरे इन्होंने विस्तार किया और राज्य जमा लिया।

बाद में अँग्रेज भी वहाँ आये। दोनों के स्वार्थों में एक दूसरे के कारण हमेशा हानि पहुँचती थी। इसलिए इनमें लड़ाइयाँ हुईं और अँग्रेज हारे। यह डच ही बाद में बोअर के नाम से प्रसिद्ध हुए। समय ने पलटा खाया। अंग्रेज शक्तिमान होते गये और बोअर-युद्ध में इन्होंने अपनी पहले वाली हार का बदला लिया। इस युद्ध में बोअरों ने अद्भुत वीरता और दृढ़ता दिखलाई। फलतः दोनों में संधि हो गई और दक्षिण-अफ्रीका की डच और अंग्रेजी चारों रियासतें (नेटाल, ट्रांसवाल आरेंज फ्रीस्टेट और केप कालोनी) मिलकर 'यूनियन ऑव साउथ अफ्रीका' के नाम से स्वतंत्र औपनिवेशिक शासन में आ गईं। जेनरल बोथा, जेनरल हरजोग, जेनरल स्मट्स इत्यादि बोअर नेता रहे हैं।

शिक्षा लोगों को दी तथा डाक्टरी प्रमाण-पत्र भी दिला दिये। उस समय तक अंग्रेजों की धारणा थी कि हिन्दुस्तानी जोखम के कामों में नहीं पड़ते इसलिए भी गाँधी को, उस समय कुछ करने की बात ज्यादा अपील कर गई। सरकार ने भी अपने संकट के समय यह सहायता स्वीकार कर ली।

इस टुकड़ी में लगभग ११०० आदमी थे। ४० कैप्टेन (मुखिया) ३०० स्वतंत्र हिन्दुस्तानी और शेष गिरमिटिया थे। डा० बूथ भी साथ थे। इस टुकड़ी ने वीरतापूर्वक अपना काम किया। कई बार प्रत्यक्ष युद्ध-क्षेत्र (firing line) में भी जाकर काम किया। जेनरल बुलर के अनुरोध से रणक्षेत्र से घायलों की डोलियों में उठा कर लाने का काम भी इन लोगों ने किया। इस तरह के घायलों में ये कितने ही प्रतिष्ठित लोगों—जेनेरल उडगेट, लार्ड रावर्ट्स के पुत्र लेफ्टनेण्ट रावर्ट्स इत्यादि को भी लाये थे। उस समय इस टुकड़ी के सेवा-कार्य की बड़ी प्रशंसा हुई। जेनरल बुलर ने भी अपने खरीते में इसकी प्रशंसा की। मुखियों को लड़ाई के तमगे भी मिले। और हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। गोरों के व्यवहार में भी कुछ अन्तर आया।

× × ×

अन्य सेवाएँ

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर गंदगी का आरोप प्रायः लगाया जाता था। जब डरबन में प्लेग का प्रवेश और प्रकोप हुआ तब इन्होंने म्यूनिसपलिटी की सम्मति से इस विषय में बड़ा काम किया। हिन्दुस्तानियों में सफाई के लिए बड़े प्रयत्न किये। इसी प्रकार १८९७ एवं १८९९ में जब भारत में अकाल पड़े तब इन्होंने दक्षिण-अफ्रीका के भारतीयों से चन्दा उगाहकर काफी रुपये भारत भेजे। दिन-दिन इनमें शुद्ध सेवा का भाव बढ़ता जा रहा था और ज्यों-ज्यों सेवा का भाव बढ़ा त्यों-त्यों सत्य का रूप मन में स्पष्ट होता गया। त्याग की भावना तीव्र होती गई।

युद्ध का काम समाप्त होने पर इन्होंने भारत लौटने का निश्चय किया पर लोगों ने इस शर्त पर इन्हें छुट्टी दी कि यदि एक साल के अन्दर आवश्यकता पड़ी तो यहां लौटना पड़ेगा।

त्याग की प्यास

इस समय भेंट में इन्हें तथा पत्नी को हीरा-जवाहर, सोना-चांदी इत्यादि की अनेक कीमती चीजें (विदाई के) उपहार में मिलीं। इनके मन में यह प्रश्न पैदा हुआ कि ये चीजें सार्वजनिक सेवा के बदले मिली हैं इसलिए इन्हें लेने का हमें क्या हक है? रात भर इनके मन में संघर्ष चलता रहा। अन्त में सत्य का प्रकाश मन में आया। सत्य की विजय हुई। इन्होंने इन चीजों को न लेने का ही निश्चय किया और ट्रस्ट बना कर यह सारी रकम एवं चीजें उन्होंने सार्वजनिक सेवा के लिए दे दीं। पत्नी ने उस समय विरोध भी किया पर यह सत्य के मार्ग में दृढ़ रहे। तब से इनका यह निश्चित मत हो गया कि जन-सेवक को जो भेंटें मिलती हैं वे उसकी निजी नहीं हो सकतीं।

भारत-यात्रा

इस तरह १९०१ ई० में यह भारत लौटे। रास्ते में मारीशस में उतर कर वहां के भारतीयों की अवस्था का भी अध्ययन किया। और वहां के गवर्नर सर चार्ल्स ब्रूस के यहां भी एक दिन मेहमान रहे।

कलकत्ता में

देश पहुँचने पर कुछ दिन घूमने घामने में बीते। इस साल कांग्रेस (भारतीय महासभा) कलकत्ते में होने वाली थी। श्री वाचा सभापति थे। यह दो तीन दिन पहले ही पहुँच गये और बिना परिचय दिये कांग्रेस आफिस में क्लर्क का काम करने लगे। पीछे इनका परिचय मिलने पर मंत्री (घोषाल बाबू) बहुत शर्मिन्दा हुए। पर इन्हें तो सेवा कार्य प्रिय था। यहां तक कि स्वयंसेवकों को 'छोटे' काम करने में घृणा करते देख कांग्रेस में दो-तीन बार पाखाने उठा कर भी वहां की गंदगी इन्होंने साफ की थी। यहां कांग्रेस-तंत्र का इनको काफी अनुभव हुआ एवं कांग्रेस की

अव्यवस्था एवं त्याग-वृत्ति के अभाव पर दुःख भी हुआ। इनके प्रयत्न से दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव कांग्रेस में सर्व-सम्मति से पास हुआ। कांग्रेस अधिवेशन के बाद भी दक्षिण-अफ्रीका के काम से यह एक महीना कलकत्ता ठहर गये। गोखले भी वहीं ठहरे थे इसलिए मालूम होने पर उन्होंने इन्हें अपने पास बुला लिया और बड़े प्रेम से अपने छोटे भाई की तरह रखा। गांधी के स्वावलम्बन, सादगी एवं उद्योगशीलता की बड़ी अच्छी छाप गोखले पर पड़ी। इसी प्रकार गोखले की सेवा-वृत्ति ने इनके मन को मोह लिया। गोखले अपना एक क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। उनके तमाम कार्य देश के लिए ही होते। फिर बातों में कहीं मलिनता, दंभ या असत्य न दिखाई देता। हिन्दुस्तान की गरीबी और पराधीनता उन्हें बहुत चुभती थी। इन बातों का गांधी पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

कलकत्ता में रहते समय इन्होंने वहां की गली-गली छान डाली। अनेक नेताओं से परिचय प्राप्त किया। आधे दिन दक्षिण अफ्रीका के सिलसिले में नेताओं से मिलते और आधा दिन कलकत्ता की धार्मिक एवं अन्य सामाजिक संस्थाएँ देखने में बिताते। इस प्रकार बंगाल के जीवन से इनका अच्छा परिचय हो गया। बीच में एक बार बर्मा भी हो आये।

कलकत्ता का कार्य समाप्त कर काशी के लिए रवाना हुए। और भारतीय जीवन के अधिक सम्पर्क में आने के उद्देश्य से तीसरे दर्जा में यात्रा शुरू की और आज तक वही क्रम चला जा रहा है। काशी में श्रीमती एनी बेसेण्ट से मिले; वहां से राजकोट आये। वहां दो एक मुकदमों की पैरवी की पर बाद में मित्रों के अनुरोध से बम्बई आ गये। वहां भी सिलसिला ठीक चलने लगा। हाईकोर्ट के पुस्तकालय से कानूनी पुस्तकें लेकर उनका अध्ययन करते। गोखले से भी मिलना-जुलना होता रहता था।

इसी समय एकाएक दक्षिण-अफ्रीका से तार आया—"चेम्बर-

लेन आ रहे हैं। आपको शीघ्र यहाँ आना चाहिए।" उन्हें अपने वचन याद थे इसलिए बाल-बच्चों को बम्बई में ही छोड़ डरबन को रवाना हो गये। १ जनवरी १९०३ को प्रिटोरिया पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही चेम्बरलेन से मिलने वाले डेपूटेशन के लिए अर्जी का मस्विदा बनाने तथा अन्य कामों में लग गये।

नेटाल में विरोध होते हुए भी गांधी का अधिकारियों में अच्छा मान था। इसलिए डेपुटेशन का कार्य पूरा हुआ। चेम्बरलेन ने मीठी मीठी बातें कीं पर कठिनाइयाँ बता कर असली प्रश्न को टाल दिया। जब ट्रांसवाल में चेम्बरलेन के पास डेपुटेशन ले जाने की बात तय हुई तो वहाँ के एशियाटिक इमीग्रेशन के अधिकारियों ने उनके कार्य में बड़ी बाधा डाली और उन्हें डेपुटेशन में रखने से इन्कार किया। गांधी जी के अनुरोध से, अनिच्छापूर्वक श्री गाडफ्रे के नेतृत्व में डेपुटेशन चेम्बरलेन से मिला। पर ऐसे आवेदनों से क्या होना जाना था ? इधर भारतीयां के कष्ट बढ़ते जा रहे थे। इसलिए लोगों के कहने से गांधी ने वहीं ठहर जाना निश्चित किया और ट्रांसवाल के सुप्रीम कोर्ट के वकीलों में भरती हो गये। इसी समय कुछ मित्रों के सहयोग से 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन' की स्थापना की।

डेपुटेशन

ज्यों-ज्यों कठिनाइयाँ बढ़ती जाती थीं, भारतीयों में जागृति होती जाती थी। इसलिए एक अखबार की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी। श्री मदनजीत नामक एक भारतीय सज्जन का छापाखाना था। उन्होंने अखबार निकालने का इरादा प्रकट किया। पत्र निकला पर पीछे इसका ज्यादातर भार गांधी जी पर ही आ पड़ा। अपनी बचत के सारे रुपये यह इसमें लगा देते थे। पहले यह पत्र हिन्दी, तामिल, गुजराती, अंग्रेजी में निकलता था पर बाद में केवल गुजराती और अंग्रेजी में ही निकलने लगा।

इण्डियन ओपीनियन

सन् १९०४ में जोहान्सवर्ग में प्लेग फैला। इसका जोर भारतीय हिस्से में ज्यादा था। म्यूनिसिपलटी वार-वार ध्यान दिलाये जाने पर भी सफाई इत्यादि की कोई व्यवस्था न करती थी। प्लेग फैलने पर भी उसने इस तरफ ध्यान न दिया। तव गाँधी ने अपने दो ही चार साथी लेकर उस खतरे के वीच भी, जान की परवा न कर के, सेवा-कार्य आरम्भ किया। उन दिनों रात-दिन रोगियों की परिचर्या में इनका समय वीतता।

प्लेग में सेवा

ये सव सार्वजनिक काम तो चल ही रहे थे पर इस वीच इनका मानसिक तथा नैतिक विकास वरावर हो रहा था। दिन-दिन स्वार्थभाव का नाश होता जा रहा था; अभी तक कमाने का जो कुछ भाव लगा था वह छूटता जा रहा था और अनासक्तिमयी सेवा का भाव वढ़ता जाता था। जो लोग उनके साथ रहते उन सव से एक कुटुम्ब जैसा व्यवहार करते। उनके शुद्ध हृदय और श्रेष्ठ चरित्र का परिचय पाकर अनेक अंग्रेज और युरोपियन इनके मित्र एवं सहयोगी हो गये थे। इनके आफिस में काम बहुत वढ़ गया था इसलिए स्काच कुमारी मिस डिक को इन्होंने टाइपिंग के लिए रक्खा। वह कुमारी बड़ी ईमानदार, सुशील एवं परिश्रमी थी। गाँधी जी के श्रेष्ठ चरित्र का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह इन्हें पिता की भाँति मानने लगी थी और पीछे तो जब उसका विवाह हुआ और मिसेज मेकाडनल्ड वनने का मौका आया तो गाँधी जी ने ही कन्यादान किया। इसी प्रकार शीघ्र लेखन (शार्ट हैंड) के लिए मिस श्लेशिना को अपने दफ्तर में रखा था। इस लड़की में जरा भी रंग-द्वेष न था; वड़ी योग्य एवं निर्भय लड़की थी। काम करने में न दिन देखती, न रात। जव वाद में सत्याग्रह में सव लोग जेल चले गये तो इस अकेली लड़की ने सारा काम सँभाल लिया था। इसके साथ ही सारा पत्र-व्यवहार एवं 'इंडियन ओपिनियन' का काम भी वह स्वयं करती थी। वाद में हेनरी पोलक नामक एक यहूदी युवक भी (जो

आत्मिक विकास

'क्रिटिक' के उप-सम्पादक थे) गांधी जी के अनुरोध से वहाँ का काम छोड़ आये और साथ काम करने लगे। इंग्लैण्ड में एक लड़की से इनका सहज स्नेह था पर गरीबी के कारण शादी न करते थे। गांधी जी ने पोलक को समझाया कि जहाँ प्रेम शुद्ध है वहाँ गरीबी अमीरी का भाव बाधक नहीं हो सकता। दोनों को यह बात पसन्द आई और दोनों की शादी हो गई। इसी प्रकार वेस्ट तथा केनेलबैक इत्यादि कितने ही यूरोपियन इनके सहयोगी थे। इन बातों से प्रकट होता है कि उनकी सेवा द्वेष-मूलक न थी और वे सत्पथ पर रहते थे जिससे विधर्मी दल के लोग भी इनसे सहानुभूति रखते थे। इस अनुभव ने उनके जीवन में बड़ा काम किया है और इसी के कारण दिन-दिन इनके जीवन में सत्य और अहिंसा का भाव दृढ़ होता गया।

'इण्डियन ओपीनियन' में दिन-दिन घाटा बढ़ता जा रहा था। इधर गांधी के पास काम बहुत बढ़ गया था। इसलिए उन्होंने श्री वेस्ट नामक अँग्रेज सज्जन को उसका कार्य-भार सँभालने को भेजा। पत्र-संचालक श्री मदनजीत उन दिनों प्लेग इत्यादि के कारण रोगियों की परिचर्या में लगे थे। उनकी जो रिपोर्ट आई उससे मालूम हुआ कि पत्र का काम सुव्यवस्थित नहीं है और उसमें आगे भी बहुत घटी की सम्भावना है। पत्र की व्यवस्था की जाँच करने यह नेटाल रवाना हुए। चलते समय, स्टेशन पर, रेल में पढ़ने के लिए पोलक ने इन्हें रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' नामक पुस्तक दी। इस पुस्तक का इनके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। जिन शक्तियों ने इनके जीवन पर स्थायी प्रभाव डाला है उनमें से इस पुस्तक का स्थान बहुत ऊँचा है। वह स्वयं लिखते हैं—

'अनटू दिस लास्ट'

"·········मेरे जीवन में यदि किसी पुस्तक ने तत्काल महत्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला है तो वह यही पुस्तक है।······मेरा विश्वास है कि जो चीज़ मेरे अन्तर में बसी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रंथ-रत्न में देखा और इस कारण उसने

मुझ पर अपना साम्राज्य जमा लिया और अपने विचारों के अनुसार मुझ से आचरण करवाया।" इस पुस्तक से इन्होंने ये सिद्धान्त निकाले—

(१) सब के भले में अपना भला है।

(२) वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए क्योंकि आजीविका का हक दोनों का एक सा है।

(३) सादा, मज़दूर एवं किसान का जीवन, ही सच्चा जीवन है।

पहली और दूसरी बात का भान तो इन्हें था पर तीसरी बात अभी तक इनके विचार में न आई थी। पुस्तक में इन्हें उसकी उपयोगिता मालूम हुई और इन्होंने निश्चय कर लिया कि सत्य के साधक के लिए सादा जीवन एवं शरीर-श्रम अनिवार्य है।

उधर शहर में रखने से 'इंडियन ओपीनियन' में अपव्यय हो ही रहा था अतः शहर से दूर एक आश्रम बनाने की बात इन्हें जँच गई।

फिनिक्स सेटिलमेंट दूसरे ही दिन वेस्ट से इन्होंने चर्चा की कि शहर के बाहर पत्र ले चला जाय। वहाँ सब एक साथ रहें, एक सा भोजन-खर्च लें, खेती करें। वेस्ट को यह बात पसन्द आई। सारी बातें तय हो गईं। फिनिक्स नामक स्थान में १०० एकड़ जमीन ले ली गई। शीघ्र ही मकान तैयार हो गये और प्रेस तथा पत्र वहाँ लाया गया। अब इनका विचार स्थायी रूप से यहीं बस जाने का हुआ क्योंकि यह उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार सीधा-सादा परिश्रम-पूर्ण जीवन बिताना चाहते थे। काम से जब यह जोहान्सबर्ग से लौटे और इन्होंने पोलक को उनकी दी हुई किताब के प्रभाव तथा नई संस्था की बात बताई तो पोलक के आनन्द की सीमा न रही और वह भी 'क्रिटिक' की नौकरी छोड़ फिनिक्स में रहने लगे और बहुत जल्द वहाँ के सीधे-सादे जीवन के अभ्यस्त हो गये। परन्तु गाँधी जी की इच्छा पूरी न हुई। शीघ्र ही सार्वजनिक कार्य-वश इन्हें जोहान्सबर्ग जाना पड़ा और पोलक भी बुला लिये गये।

यहाँ आये भी थोड़े ही दिन बीते थे कि 'जुलू-विद्रोह (१६०६) का समाचार आया। 'जुलू' वहाँ की एक पुरानी वीर जाति है। असल में तो अंग्रेजों का पक्ष अन्यायपूर्ण था पर उस समय अँग्रेजी राज्य की न्याय-परायणता में इनका विश्वास था। अतः इन्होंने गवर्नर को पत्र लिखा कि "घायलों की सेवा-शुश्रूषा के लिए मैं हिन्दुस्थानियों की एक टुकड़ी लेकर जाने को तैयार हूँ।" गवर्नर ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। फलतः २४ आदमियों की टुकड़ी लेकर यह सेवा-कार्य के लिए चल दिये। इन्हें 'सार्जेण्ट मेजर' का अस्थायी पद दिया गया। इस टुकड़ी ने ६ सप्ताह तक बड़ी लगन से सेवा की। सच पूछें तो इसमें विद्रोह-जैसा कुछ न था। 'जुलू' निरपराध थे। उनके एक सरदार ने जुलू लोगों पर बैठाये गये नये कर को न देने की सलाह दी थी और कर-वसूली को गये एक सर्जेण्ट की हत्या कर डाली थी। इस पर गोरे उन्हें पीसने के लिए चढ़ दौड़े थे। इसलिए गांधी का हृदय तो जुलू लोगों की तरफ था। इन्होंने जुलू घायलों की तन-मन से सेवा की। कभी-कभी इनकी टुकड़ी को २५-२५, ३०-३० मील चलना पड़ा। इन कार्यों की स्वयं गवर्नर ने तारीफ की और इन लोगों को मेडल भी दिये गयें।

'जुलू' बलवा

इस सेवा-कार्य से लौटते ही इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का व्रत ले लिया। क्योंकि दिन-दिन इनका अनुभव दृढ़ होता जाता था कि ब्रह्मचर्य-हीन जीवन पशुवत् है और सेवा-परायण सत्यार्थी की इसके पालन के बिना गति नहीं। सार्वजनिक सेवा में समय लगाने वाले लोक-सेवक का मार्ग इससे सरल हो जाता है; उसकी सेवा निःस्वार्थ होने की अधिक सम्भावना रहती है और घरेलू कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं। इस ब्रह्मचर्य-व्रत का फल यह हुआ कि इन्होंने तपस्वी का जीवन अंगीकार कर लिया। खान-पान शरीर-रक्षा के भाव से करते और शरीर को अधिकाधिक कष्ट-सहन के योग्य बनाते।

आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत

गांधी जी को जुलू-विद्रोह के सेवा-कार्य से लौटे थोड़े ही दिन हुए थे कि ट्रांसवाल सरकार ने ड्राफ्ट एशियाटिक ला अमेण्डमेण्ट बिल कौंसिल में पेश किया। इस बिल का सारांश यह था—"ट्रांसवाल में रहने का हक रखने की इच्छा करने वाले भारतीय स्त्री-पुरुष और आठ वर्ष से अधिक उम्र के बालक बालिकाओं को एशियाई दफ्तर में अपना नाम लिखा कर परवाना प्राप्त करना चाहिए। नाम लिखाने की अर्जी में अपना नाम, स्थान, जाति, उम्र इत्यादि लिखे जायँ। नाम लिखने वाले अधिकारी को चाहिए अर्जी देने वाले के शरीर के मुख्य चिह्नों को नोट कर ले और उसकी तमाम उंगलियों एवं दोनों अंगूठों को छाप ले ले। उन भारतीय स्त्री-पुरुषों का ट्रांसवाल में रहने का हक रद समझा जाय जो नियत समय के भीतर इस प्रकार अर्जी देकर अपना नाम रजिस्टर में दर्ज न करा लें। अर्जी न देना अपराध है और इसके लिए जेल या जुर्माने की सजा हो सकती है और अदालत स्वीकार करे तो देश-निकाले की भी सजा दी जा सकती है। बच्चों के लिए अर्जी देने एवं उनके शरीर के निशान एवं उंगलियों की छाप कराने की जिम्मेदारी माता-पिता के ऊपर है। यदि माता-पिता इस जिम्मेदारी को अदा करने में असावधानी करें तो सोलह वर्ष की उम्र होते ही बच्चे स्वयं उसे अदा करें और माता-पिता को इस अपराध की सजा दी जायेगी। अर्जीदार को जो परवाना दिया जाय उसे हर समय रखना चाहिए और जहाँ जब कोई पुलिस अधिकारी मांगे उसे दिखाना चाहिए। उसका ऐसा न कर सकना एक जुर्म समझा जायगा जिसके लिए अदालत उसे कैद या जुर्माने की सजा दे सकती है। राह चलते मुसाफिर से भी यह परवाना मांगा जा सकेगा। परवाना ढूँढ़ने के लिए अधिकारी लोग भारतीयों के मकान में भी घुस सकते हैं। यह परवाना किसी भी दफ़्तर में, किसी भी भारतीय के वहां काम से जाने पर मांगा जा सकता है। उसे न दिखाने या आवश्यक प्रश्नों

नया बिल

दूसरा उपाय करने के पूर्व यही निश्चय किया गया कि सब प्रकार के वैध प्रयत्न करके देख लिये जायँ। ट्रांसवाल साम्राज्य-सरकार के अधीन उपनिवेश था इसलिए ट्रांसवाल-कौंसिल के पास बिलों पर सम्राट एवं साम्राज्य-सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। इस दिशा में अन्त तक प्रयत्न करके देख लेने के उद्देश्य से भारतीयों का एक डेपुटेशन इंग्लैंड भेजने का निश्चय हुआ। इसके लिए गांधी जी और हाजी वज़ीरअली चुने गये। विलायत पहुँचते ही ये लोग अपने काम में लग गये। अर्ज़ी रास्ते में ही लिख ली थी। लन्दन पहुँचते ही दादा-भाई नौरोजी से मिले और उनके द्वारा ब्रिटिश कमेटी से मिले। मंचेरजी भावनगरी से भेंट की। इन लोगों की सलाह से सर लेपेल ग्रिफिन से भी मिले। उन्होंने इस डेपुटेशन का नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया। अनेक ऐंग्लो इंडियन और पार्लमेंएट के सदस्यों से मिले और अपना तात्पर्य उनको समझाया। लार्ड एलगिन उपनिवेश-सचिव थे; उनसे मिले। उन्होंने सहानुभूति दिखाई और यथासम्भव सहायता का वचन दिया। डेपुटेशन लार्ड मार्ले से भी मिला। पार्लमेंएट के दीवानखाने में गांधी ने इस विषय में पार्लमेंएट के सदस्यों की एक सभा में भाषण भी किया। श्रीसिमएड्स इत्यादि कई पर-दुःख-कातर अंग्रेजों से इस समय सहायता मिली। और इस सम्बन्ध में आन्दोलन करते रहने के लिए एक कमेटी (जिसके मंत्री मि० रिच थे) बना कर ५-६ हफ्ते बाद ये लोग दक्षिण-अफ्रीका से लौटे। रास्ते में ही श्री रिच का तार मिला कि लार्ड एलगिन ने सम्राट से कानून रद्द करने की सिफारिश की है। पर बाद में जोहान्सबर्ग पहुँचने पर मालूम हुआ कि बात असल में यह न थी। १९०७ की पहली जनवरी को ट्रांसवाल को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया जाने वाला था इसलिए तब तक के लिए, ट्रांसवाल के राजदूत की सलाह से, इस सवाल को स्थगित कर दिया गया। लार्ड एलगिन ने राजदूत

विलायत को डेपुटेशन

(एक स्थान) में कुछ प्रतिष्ठा थी पर वैसे इन्हें ज्यादा लोग न जानते थे पर सरकार की इस 'कृपा' से सारे दक्षिण-अफ्रीका में उनकी प्रसिद्धि हो गई। अदालत में उनका आदर किया गया: एक महीने की सादी कैद हुई। जेल में भी उनके साथ अच्छा व्यवहार हुआ; युरोपियन वार्ड में एक अलग कमरा दिया गया एवं मिलने-जुलने की भी सुविधाएँ दी गईं। खाना बाहर से जाता था। उनकी गिरफ्तारी से लोगों में और जागृति फैली। सैकड़ों जेल जाने को तैयार हो गये। इस समय 'इण्डियन ओपीनियन' पत्र के कारण आन्दोलन को बड़ी सहायता मिली। सरकार ने सोचा कि खास-खास नेताओं के गिरफ्तार किये बिना आन्दोलन दब नहीं सकता। दिसम्बर में गांधी जी तथा कुछ कार्य-कर्त्ताओं को सजा मिली। दो-दो महीने की सादी कैद हुई। उनकी गिरफ्तारी के साथ ही आन्दोलन बढ़ गया। झुण्ड के झुण्ड लोग स्वेच्छापूर्वक कानून तोड़कर जेल जाने लगे। एक हफ्ते में १०० सत्याग्रही जेल पहुँचे। ज्यों-ज्यों आन्दोलन बढ़ा त्यों त्यों सरकार का रोष भी बढ़ा। सादी की जगह कड़ी सजा होने लगी। पर इससे भी लोगों के उत्साह में कमी न आई। अब सरकार को विश्वास होने लगा कि भारतीय अपने अधिकार लेकर ही छोड़ेंगे। सुलह की बातचीत होने लगी। जनरल स्मट्स की ओर से 'ट्रांसवाल लीडर' दैनिक के सम्पादक अलबर्ट कार्टराइट गांधी जी से जेल में मिले। दोनों में यह तय हुआ कि भारतीय स्वेच्छापूर्वक परवाने बदलवा लें; उनपर कानून की कोई जबरदस्ती न रहेगी। नवीन परवाना, सरकार भारतीयों की सलाह से बनावे और यदि भारतीय उसे स्वेच्छापूर्वक ले लें तो कानून रद्द कर दिया जाय।' पर कार्टराइट ने कहा कि जेनरल स्मट्स इस पर शायद ही राजी हों। वह चले गये। दो-तीन दिन के बाद जोहान्सबर्ग के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट आकर जेल से गांधी जी को जेनरल स्मट्स के पास ले गये। उन्होंने

गिरफ्तारी

समझौता

के प्रधान अधिकारियों से मिले। पर कुछ विशेष फल न हुआ। इनके लौटने पर सत्याग्रह को जोरों से चलाने का निश्चय हुआ। इस समय तक जेल जाने वाले स्वयंसेवकों के कुटुम्बों का थोड़ा-बहुत खर्च भी आन्दोलन पर पड़ रहा था। इसलिए खर्च में कमी करने एवं एक कुटुम्ब का भाव जगाने के विचार से सब को एकत्र रखने का विचार हुआ। श्री केलेनबैक नामक जर्मन साथी ने गांधी जी को अपनी ११०० एकड़ भूमि (जो जोहान्सबर्ग से २१ मील—स्टेशन से एक मील थी) इस काम के लिए दे दी। यहां सब लोगों ने मिल कर स्वयं मकान खड़े कर लिये और इस प्रकार 'टालस्टाय फार्म' की स्थापना हुई। यहां गांधी जी ने रस्किन एवं टालस्टाय के सादा जीवन बिताने और कथित परिश्रम करने के सिद्धान्त को कार्य-रूप में परिणत किया। 'फिनिक्स आश्रम' और 'टालस्टाय फार्म' में उन्होंने जो प्रयोग किये उन्हीं का विकसित रूप बाद में हम साबरमती के सत्याग्रह आश्रम में देखते हैं।

टालस्टाय फार्म

'टालस्टाय फार्म' में यह नियम रखा गया कि किसी प्रकार का घरू, खेती का या मकान बांधने का काम नौकरों से न लिया जाय। सब काम ये लोग स्वयं करते,—पाखाना उठाने से लेकर जूता बनाने तक का। इस समाज में गुजराती, मद्रासी, उत्तरभारतीय—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी थे। भोजन बिलकुल सादा होता था। शिक्षा का भी कुछ प्रबन्ध था। मतलब सीधा-सादा अनाग्रहपूर्ण जीवन बिताने की शिक्षा यहाँ मिलती थी।

इन्हीं दिनों गोखले दक्षिण-अफ्रीका आये। इंग्लैंड से भारत-सचिव ने उनके सम्बन्ध में—उनकी मर्यादा के सम्बन्ध में यूनियन सरकार को सब हिदायतें कर दी थीं; इसलिए गोखले का खूब स्वागत हुआ—सरकार द्वारा भी, जनता द्वारा भी। गोखले ने घूम-घूम कर भारतीयों की अवस्था [illegible] और फिर [illegible]री अधिकारियों से मिले। अधि-

गोखले का आगमन

ारियों ने शीघ्र ही काला कानून रद्द करने, तीन पौण्ड वाला कर रद्द रने और इमीग्रेशन कानून से वर्ण-भेद वाला हिस्सा निकाल देने ा वचन दिया। गोखले ने तो अधिकारियों के वादों पर विश्वास कर िया पर गांधी जी को पहले कड़ुवा अनुभव हो चुका था इसलिए न्हें विश्वास नहीं हुआ। और अन्त में हुआ भी वही। सरकार ने

फिर चोट !

अपना वादा पूरा नहीं किया। इससे भारत में बड़ी उत्तेजना फैली। श्री नटेशन एवं गोखले ने बड़ा प्रयत्न किया। तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंज ने भी दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतीयों के साथ खुले आम सहानुभूति प्रकट की। पर यूनियन सरकार तो जिद पर तुली थी। इस समय उससे गलतियाँ पर गलतियाँ हो रही थीं। दक्षिण-अफ्रीका में कितने ही भारतीय ऐसे थे जिनका विवाह उनकी जातीय एवं धार्मिक प्रथाओं के अनुसार भारत में हुआ था पर अदालत के एक फैसले के अनुसार—जिसको यूनियन सरकार ने स्वीकार कर लिया—ये सब विवाह नाजायज करार दिये गये। यह फैसला हुआ कि दक्षिण-अफ्रीका के कानून में उसी विवाह के लिए स्थान है जो ईसाई धर्म की रीतियों के अनुसार होता है। मतलब यह

घोर अपमान

कि कानून की दृष्टि में सारी मुसलमान एवं हिन्दू महिलाओं की कोई स्थिति न थी। कानूनी दृष्टि से इन विवाहित स्त्रियों की स्थिति रखेलियों-सी हो गई। इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता था ? मातृ-जाति के इस अपमान ने भारत में खलबली मचा दी। १२ सितम्बर १६१३ को सत्याग्रह की घोषणा की गई। २८ सितम्बर को गाँधी जी ने सरकार को चुनौती का पत्र ('अल्टिमेटम') भेजा। उधर स्त्रियाँ भी इस प्रकार अपमान होते देख सत्याग्रह के लिए मैदान में आ डटी और आन्दोलन ट्रांसवाल की

मजूरों की हड़ताल

सीमा लांघकर नेटाल में भी फैल गया। स्त्रियों की अपील पर खानों के मजूरों ने काम छोड़ दिया और हजारों जेल जाने को तैयार हो गये। ऊपर कहीं लिखा जा चुका है कि

चले गये थे। उधर लड़ाई छिड़ गई थी। इसलिए वहाँ से कब आवेंगे इसका निश्चय न था किन्तु गाँधी जी को उनसे मिलना था इसलिए वह ठहर गये। इस बीच इन्होंने यह निश्चय किया कि विपत्ति के समय साम्राज्य सरकार की सहायता करना भारतीयों का कर्तव्य है अतः उन्होंने वहाँ भारतीय स्वयंसेवकों का एक दल संगठित किया और घायल सिपाहियों की सेवा-सुश्रूषा करने की इच्छा प्रकट की। लार्ड क्यू ने स्वीकार कर लिया। डाक्टरी शिक्षा के लिए डा० फेण्टली की देख-रेख में क्लास खोला गया और अस्सी स्वयंसेवक इसमें शिक्षा प्राप्त करने के लिए भरती हुए। ६ हफ्ते के बाद परीक्षा हुई। ७६ पास हुए। इन लोगों को सरकारी कवायद सिखाने का भार कर्नल बैकर के सुपुर्द हुआ।

किन्तु कुछ ही दिनों बाद गांधी जी की तबियत ज्यादा खराब हो गई, पसली में दर्द रहने लगा। बहुत इलाज कराया पर अच्छा न हुआ। उस समय वे दूध इत्यादि बिलकुल न लेते थे। अन्त में ब्रिटिश अधिकारियों की सलाह से यह भारत लौट आये। श्री गोखले पहिले ही भारत लौट गये थे। श्री कैलेनबैक को जर्मन होने के कारण पासपोर्ट न मिला।

गांधी जी जब बम्बई पहुँचे उनका खूब धूमधाम से स्वागत किया गया। फिर वह गोखले के साथ पूना आये। इस समय तक फीनिक्स-आश्रम के उनके बहुत से साथी भारत लौट गये थे। इसलिए सबको एक जगह रखकर आश्रम-जीवन बिताने के विचार गांधी जी में दृढ़ होते जा रहे थे। उन्होंने इन साथियों को भी श्री एण्डरूज़ के सुपुर्द कर दिया था। श्री एण्डरूज ने उन्हें कुछ दिन गुरुकुल कांगड़ी में रखा और बाद में शान्ति-निकेतन भेज दिया था।

पूना से गांधी जी जब राजकोट जा रहे थे तब वीरम-गांव की जकात की जांच से होने वाली तकलीफों की शिकायतें उनके पास तक पहुँचीं। वह बम्बई के गवर्नर लार्ड वेलिंगडन (बाद में भारत के

वाइसराय) से मिले। उन्होंने कहा—"भारत सरकार की ओर से ही देर हो रही है।" फिर उन्होंने भारत-सरकार से पत्र-व्यवहार शुरू किया। बाद में वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से मिले। उनको तो इन बातों का कुछ पता ही नहीं था। उन्होंने तुरन्त टेलीफोन करके वीरमगांव से कागज-पत्र मंगवाये और थोड़े ही दिनों बाद जकात रद्द कर दी।

वीरमगांव की जकात

राजकोट से गांधी जी अपने साथियों से मिलने शान्ति-निकेतन गये। वहाँ कुछ दिन रहने का इरादा था। पर शीघ्र ही उन्हें पूना से गोखले के देहावसान का समाचार मिला। इससे उनके हृदय पर बड़ी ठेस लगी। वे तुरन्त पत्नी एवं भतीजे स्व० मगनलाल भाई को लेकर पूना को रवाना हुए। वहाँ से फिर अपने मित्र डा० प्राणजीवन मेहता से मिलने रंगून गये। वहाँ से लौट कर हरिद्वार के कुम्भ में एक टुकड़ी लेकर यात्रियों की सेवा का कार्य किया। यह सब तो चल ही रहा था पर मुख्य बात यह थी कि यह सदा आत्म-निरीक्षण किया करते थे। और फलतः इनकी आत्मा दिन-दिन निर्मल और पवित्र हो रही थी।

गोखले का देहावसान

× × ×

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि गांधी जी का विचार अपने साथियों को लेकर एक आश्रम स्थापित करने एवं उसमें सरल सात्विक जीवन बिताने का था। कुछ लोगों ने हरिद्वार में, कुछ ने बैजनाथ धाम में, कुछ ने राजकोट में खोलने की सलाह दी। इस बीच यह अहमदाबाद से गुजरे तो वहाँ के मित्रों ने अहमदाबाद को चुनने का आग्रह किया और आश्रम के खर्च का भार भी अपने ऊपर ले लिया। फलतः अहमदाबाद जिले के कोचरब नामक स्थान में मकान लिया गया; 'सत्याग्रह-आश्रम' नाम रखा गया क्योंकि सत्य की पूजा एवं सत्य का शोध ही उनका लक्ष्य था। २५ मई १९१५ को आश्रम की स्थापना हुई। जो लोग शामिल

सत्याग्रह-आश्रम का जन्म

हुए उनमें तमिल एवं गुजराती लोगों की अधिकता थी। वे एक ही भोजनशाला में भोजन करते थे और इस तरह रहने का प्रयत्न करते थे मानों वे एक ही कुटुम्ब के हों। उसमें अछूतों को भी रखने का नियम रखा था। इसके कारण इसे बहिष्कार इत्यादि की कितनी ही झंझटें झेलनी पड़ीं पर अपने धर्म में गांधी जी एवं अन्य आश्रमवासी अचल रहे।

गिरमिट प्रथा

१९१४ ई० में नेटाल के गिरमिटियों पर से ३ पौं० का कर उठा लिया गया। पर गिरमिट प्रथा (जिसके अनुसार ५ या कम वर्ष की मजदूरी के इकरार पर मजूर भारत से भेजे जाते थे) का अन्त न हुआ था। १९१६ ई० में मालवीय जी ने बड़ी धारा सभा में यह प्रश्न उठाया। फरवरी १९१६ ई० में उन्होंने इस प्रथा को उठा देने का कानून कौंसिल में पेश करने की इजाजत वाइसराय से माँगी पर उन्होंने न दी। इसलिए भारत में फिर आन्दोलन शुरू हुआ। स्थान-स्थान पर सभाएँ हुईं। और अन्त में सत्याग्रह करने का भी निश्चय हुआ। ३१ जुलाई तक का समय सरकार को दिया गया। सरकार झगड़ा मोल लेना नहीं चाहती थी इसलिए उसने ३१ जुलाई के पहिले ही कुली-प्रथा को बन्द करने की घोषणा प्रकाशित कर दी।

चम्पारन की समस्या

'तीन कठिया'

इधर जब से गाँधी जी भारत आये थे, प्रयत्न कर रहे थे कि काँग्रेस के दोनों दल—नरम-गरम—मिल जायँ। १९१६ ई० में दिसम्बर में लखनऊ में महासभा का अधिवेशन हुआ। उसमें दोनों दलों में समझौता हो गया। इस समय विहार में नील की खेती करने वाले गोरों का अत्याचार जोरों से बढ़ा हुआ था। लोगों के अनुरोध से यह विहार गये। वहाँ जाकर अच्छी तरह इस मामले की जाँच की। मालूम हुआ कि 'तीन कठिया' की

प्रथा से किसानों को वड़ा कष्ट है। इसके अनुसार चम्पारन के किसान अपनी ही जमीन $\frac{3}{20}$ हिस्से में नील की खेती जमीन के असली मालिक के लिए करने को कानूनन वाध्य थे।

पटना में राजेन्द्र वावू और व्रजकिशोर वावू से सलाह करने के वाद १५ अप्रैल १९१७ ई० को यह मुजफ्फरनगर पहुँचे। वहाँ एक व्याख्यान हुआ। फिर वहाँ से १६ अप्रैल को चम्पारन के मोतीहारी शहर में पहुँचे। वहाँ जिला मजिस्ट्रेट की नोटिस मिली कि २४ घण्टे के अन्दर जिला छोड़ दो।

मजिस्ट्रेट का हुक्म

गाँधी जी ने इसकी अवज्ञा की; मुकदमा चला। उन्होंने वाइसराय तथा मालवीय जी इत्यादि को सारी स्थिति समझाते हुए तार दे दिया था। जव मुकदमा चल रहा था तभी सरकार की आज्ञा मिली कि गाँधी को सव स्थानों में घूम कर जाँच करने की स्वतंत्रता दी जाय। तव गाँव-गाँव घूम कर इन्होंने वहाँ की स्थिति का गहरा अध्ययन किया; किसानों के वयान लिये। इस प्रकार लगभग ७००० किसानों के वयान लिये गये।

उधर इस हलचल से निलहे गोरे उत्तेजित होने लगे पर इससे गाँधी जी का काम रुका नहीं। वह गवर्नर सर एडवर्ड गेट से मिले। उन्होंने जाँच समिति नियुक्त करने का वचन दिया। फलतः सर फ्रैंक स्लाई की अध्यक्षता में जाँच-समिति वैठी। गाँधी जी भी उसके सदस्य थे। समिति ने किसानों की तमाम शिकायतें सच्ची वताई और सर्व-सम्मति से यह सिफारिश की कि निलहे गोरे अनुचित रीति से पाये रुपयों का कुछ भाग वापस कर दें और 'तीन कठिया' का कायदा रद्द कर दिया जाय। गोरों ने इसका वड़ा विरोध किया पर गवर्नर सर एडवर्ड गेट की दृढ़ता से कानून वना और किसानों की शिकायतें दूर हो गईं। इसके फलस्वरूप वहाँ के किसानों में खूव जागरण हुआ और निलहे गोरों के राज्य का अन्त हो गया। इनकी खूव प्रसिद्धि

जाँच समिति

कष्ट-निवारण

हुई। इस प्रकार धीरे-धीरे यह भारत के प्रथम श्रेणी के नेताओं में स्थान प्राप्त करते जा रहे थे।

× × ×

चम्पारन का काम चल ही रहा था कि मजदूर संघ के सम्बन्ध में अहमदाबाद से श्रीमती अनसूया बहिन का पत्र मिला। यह १६१८ की शायद फरवरी थी। मजूरों को वेतन बहुत कम दिया जाता था; और भी कई असुविधाएँ उन्हें थीं। मजूरों की माँग थी कि वेतन बढ़ाया जाय। मजूरों के साथ सदा से गाँधी जी की सहानुभूति थी। इसलिए छुट्टी पाते ही वह तुरन्त अहमदाबाद पहुँचे। जाँच करने पर मजूरों का पक्ष इन्हें मजबूत मालूम हुआ। पहिले इन्होंने मिल-मालिकों को बहुत समझाया कि पञ्चायत-द्वारा निर्णय करा लो पर उन्होंने इस बात पर ध्यान न दिया। अतः इन्होंने मजूरों को हड़ताल करने की सलाह दी तथा सदा अहिंसा पर दृढ़ रहने का उपदेश किया। इस हड़ताल के सिलसिले में वल्लभभाई तथा शंकरलाल बैंकर से इनका परिचय हुआ। रोज मजूरों की सभा होती। जुलूस निकलता पर दो सप्ताह बाद मजूरों में कमजोरी आने लगी। काम पर जाने वाले मजूरों से छेड़-छाड़ भी हो गई। इससे दुःखित हो गाँधी जी ने उपवास शुरू किया। उस दिन हड़ताल का १८ वां दिन था। अन्त में २१ वें दिन श्री आनन्दशंकर ध्रुव को पंच मानना दोनों पक्षों ने मंजूर किया। हड़ताल समाप्त हुई; समझौता हो गया।

मजदूरों की सेवा

इधर यह सब हो रहा था, उधर कोचरब (जहाँ सत्याग्रह आश्रम था) में प्लेग फैल गया। इसलिए आश्रम को वहाँ से हटाने की आवश्यकता मालूम पड़ी। प्रयत्न करने पर साबरमती जेल के पास ही जमीन मिल गई। वहाँ खेमे डालकर काम निकाला जाने लगा। आगे चलकर यहीं स्थायी रूप से आश्रम की नींव पड़ी।

साबरमती आश्रम की नींव

घटनाएँ कुछ इस क्रम से घट रही थीं कि गाँधी जी को कभी विश्राम न मिलता था। भगवान् उन्हें इन कठिनाइयों में डालकर गढ़ रहा था। मजूरों के काम से निबटे ही थे कि दूसरा काम सिर पर आ गया। बात यह थी कि खेड़ा जिले में फसल नष्ट हो गई थी; किसान बुरी हालत में थे। ऐसी हालत में भी लगान माफ नहीं किया गया। इससे उनके कष्ट बढ़ गये। मजूरों के प्रश्न के निबटारा होने के बाद दम मारने की फुरसत भी न मिली और खेड़ा-सत्याग्रह का काम उन्हें उठा लेना पड़ा। इस सम्बन्ध में उन्हें अमृतलाल ठक्कर (आजकल हरिजन सेवा संघ और कस्तूरबा ट्रस्ट के प्रधान मंत्री) ने जांच करके रिपोर्ट की थी। कौंसिल में भी प्रयत्न चल रहा था। सरकार के पास प्रतिनिधि-मंडल भी गया था। इस समय गाँधी जी गुजरात सभा के प्रमुख थे। इसलिए सभा की ओर से उन्होंने कमिश्नर एवं गवर्नर को अर्जियाँ दीं; तार दिये। पर बदले में अपमान सहना पड़ा एवं धमकियां मिलीं। लोगों की माँग स्पष्ट थी। कानून यह था कि यदि फसल ४ आने से कम हो तो उस साल जमीन कर माफ होना चाहिए। सरकारी अफसर कहते थे कि फसल चार आने से अधिक हुई है पर फसल वास्तव में कम हुई थी। लोगों ने इसके प्रमाण दिये पर सरकार कब मानने लगी। अन्त में सब तरफ से दौड़-धूप कर लेने के बाद गाँधी जी ने सत्याग्रह की सलाह दे दी।

वैध प्रयत्न में असफलता

लोगों ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ली। गाँव-गाँव घूमकर लोगों को सत्याग्रह का रहस्य समझाया जाने लगा। देखते-देखते आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। सरकार भी दमन पर तुल गई। बहुतों के ढोर बेच दिये गये; घर का जो माल सामने आया, उठा ले गये और किसी-किसी गाँव की सारी फसल जब्त कर ली गई। लोग गिरफ्तार किये गये। जब सरकार ने देखा

सत्याग्रह

कि दमन से यह आन्दोलन न दबेगा तो वह इस बात पर राजी हो गई कि धनी किसान अपना लगान दे दें और गरीबों का लगान माफ कर दिया जाय। इस बात पर सत्याग्रह समाप्त हो गया। इस सत्याग्रह से गुजरात के किसानों में जागृति आई और उन्हें अपनी शक्ति का भान हुआ।

महायुद्ध में सरकार की सहायता

इन दिनों युरोपीय युद्ध जोरों पर था। गांधी जी को लगा कि आपत्ति के समय सरकार की सहायता करनी चाहिए। इसी समय वाइसराय लार्ड चेम्सफर्ड ने विशेष रूप से परामर्श करने के लिए इन्हें दिल्ली बुलाया। यह गये। इन्होंने सहायता करना तो स्वीकार कर लिया पर वाइसराय को एक पत्र लिख कर लोकमान्य तिलक एवं अली-बन्धुओं को इस सभा में न बुलाने के बारे में खेद प्रकट किया तथा जनता की राजनीतिक एवं मुसलमानों की खिलाफत-सम्बन्धी माँगों का उल्लेख किया।

रंगरूटों की भरती के लिए इन्हें गांव-गांव दौड़ना पड़ता था। रात-दिन के परिश्रम के कारण स्वास्थ्य खराब हो गया। फलस्वरूप यह एकाएक बीमार पड़े। पेट दर्द और संग्रहणी का भयंकर दौरा हुआ। कमजोरी बढ़ गई। बार-बार टट्टी जाने के कारण बुखार आ गया; बेहोशी भी रहने लगी। डाक्टर आये पर इतने खतरे के बीच भी इन्होंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। शरीर दिन दिन कमजोर होता जा रहा था। ठठरी रह गई थी। बीमारी इतनी बढ़ गई कि गाँधी जी के जीने की भी आशा न रही। फिर केलकर नामक एक सज्जन के बरफ का उपचार करने से लाभ हुआ और धीरे-धीरे रोग दूर हो गया। जब यह बीमार थे जर्मनी की पूरी हार हो चुकी थी। इसलिए कमिश्नर ने इन्हें कहला दिया कि अब रंगरूटों की भरती करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार इस चिन्ता से यह छूट गये।

× × ×

अफ्रीका से लौटने के बाद गांधी राष्ट्रीय महासभा के कामों

में भी खूब रस लेने लगे थे। जब अगस्त १९१७ में भारत में श्री माण्टेगू के आने की घोषणा हुई तो गांधी जी-द्वारा संगठित गुजरात सभा ने नवम्बर में यह

माण्टेगू को अर्जी

योजना निश्चित की कि कांग्रेस और होमरूल लीग की ओर से उन्हें एक अर्जी दी जाय जिस पर अधिक से अधिक आदमियों के दस्तखत लिये जायँ। कांग्रेस एवं लीग को यह प्रस्ताव पसन्द आया और फलतः दिल्ली में श्री माण्टेगू को यह अर्जी भेंट की गई। इसमें हजारों आदमियों के दस्तखत थे। इस प्रकार १७ दिसम्बर १९१७ को उन्होंने 'बाम्बे कोऑपरेटिव कान्फ्रेंस' और ३ नवम्बर को गुजरात राजनीतिक सम्मेलन एवं गुजरात शिक्षा-सम्मेलन के सभापति का कार्य किया। दिसम्बर में कलकत्ता कांग्रेस के साथ समाज-सेवा-संघ का पहला अधिवेशन हुआ। उसके भी यही अध्यक्ष थे।

× × ×

महायुद्ध की समाप्ति हो रही थी। उधर सरकार ने भारतीयों की सेवाओं का उचित पुरस्कार देने के बदले कतिपय हत्याकाण्डों एवं षड्यंत्रों का बहाना लेकर जनता के अधिकारों में और कमी करने का निश्चय कर लिया था।

रौलट ऐक्ट

इसके लिए रौलट कमेटी बैठी। और रौलट बिल कौंसिल में पेश हुआ। उसका एक स्वर से सम्पूर्ण भारत में विरोध हुआ था। विरोध की सभाओं की धूम मच गई। एक तहलका मचा हुआ था। जनता की आशाओं पर यह तुषारपात था। उसने आज के दिन पर बड़ी-बड़ी आशाएँ लगा रखी थीं। पर ऐसे ही समय वज्रपात हुआ; निराशाओं के बादल छा गये। जब भारत पुरस्कार की आशा करता था तब उसे दण्ड मिला। भारत की सेवा का यह अद्भुत जवाब था। दुनिया के इतिहास में ऐसे उदाहरण इने-गिने हैं। पर विधाता को ऐसी ही विषमताओं के बीच तपाकर भारत का भाग्य गढ़ना था। अस्तु; इस भारत-व्यापी विरोध की भी सरकार ने उपेक्षा की। क़ानून बन गया।

गांधी जी ने वाइसराय को बहुत लिखा; आर्जू-मिन्नत की पर उसका कुछ खयाल न किया गया। अन्त में विवश होकर सत्याग्रह का निश्चय करना पड़ा। बम्बई में गाँधी जी की अध्यक्षता में केन्द्रीय सत्याग्रह-समिति स्थापित हुई। २८ फरवरी १९१९ को गाँधी जी ने वह प्रसिद्ध प्रतिज्ञा-पत्र निकाला जिसमें इस कानून को न मानने की घोषणा थी। इस पर लोगों के दस्तखत लिये गये। गाँधी जी जनता को तैयार करने के लिए सारे देश में दौरा कर रहे थे। सभाओं की धूम थी। गाँधी जी जहाँ जाते लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाते। पहले ३० मार्च को सत्याग्रह का दिन निश्चित किया गया था पर बाद में बदलकर ६ अप्रैल की तारीख रखी गई। इस दिन हड़ताल करने, उपवास रखने एवं सभा करके इस कानून के प्रति विरोध करने का कार्य-क्रम रखा गया था। सारे देश में जोरों से हड़ताल हुई। बम्बई, दिल्ली इत्यादि में जनता का जोश देखने लायक था। केन्द्रीय समिति ने जब्त किताबें बेच कर कानून तोड़ने का भी कार्य-क्रम रखा। गांधी जी ने 'सत्याग्रही' नामक एक पत्र बिना डिक्लेरेशन दिये निकाला। इसकी तथा अन्य पुस्तकों की (जिनमें उनकी 'सर्वोदय' एवं 'हिंद स्वराज्य' नामक पुस्तकें थीं) जोरों से बिक्री हुई। लोगों ने पचास-पचास रुपये देकर उन्हें खरीदा और यह सब आय सत्याग्रह के काम के लगाई गई।

सत्याग्रह का निश्चय और तैयारी

तिथि-परिवर्तन की सूचना देर से पहुँचने के कारण दिल्ली में ३० मार्च को ही हड़ताल हुई थी। उस समय से दिल्ली एवं पंजाब के कार्यकर्त्ता गाँधी जी को तुरन्त आने के लिए लिख रहे थे। ७ अप्रैल की रात को वह बम्बई से दिल्ली के लिए रवाना हुए। १० ता० को प्रातःकाल कोसी में ट्रेन में ही शान्ति-भंग की संभावना बता कर पंजाब दिल्ली की सीमा में प्रवेश न करने की आज्ञा उन पर तामील की गई। उन्होंने आज्ञा मानने से इन्कार किया। फलतः गिरफ्तार करके वह

पंजाब में प्रवेश-निषेध

बम्बई लाये गये और वहाँ छोड़ दिये गये। वहाँ उन पर यह आज्ञा तामील की गई कि बम्बई प्रान्त के अन्दर ही अपना कार्य-क्षेत्र सीमित रखें। उनकी गिरफ्तारी से देश में बड़ी उत्तेजना फैली। कई स्थानों में दंगे हो गये। गाँधी जी ने शुद्ध सत्य के पालन की दृष्टि से अहिंसा को आन्दोलन का मूलाधार रखा था। इसलिए इस प्रकार दंगे होने के कारण उन्होंने १८ अप्रैल को आन्दोलन स्थगित कर दिया। बहुतेरे साथी इससे नाराज भी हुए पर सत्याग्रही तो अपने धर्म को कैसे छोड़ सकता था? इस समय इन्होंने इन दंगों के कारण ३ दिन का उपवास भी किया।

पंजाब-हत्याकांड

सैनिक शासन

इधर यह सब हो रहा था उधर पंजाब में जो दंगे हुए उसके कारण सरकार ने वहाँ फौजी कानून जारी कर दिया। अमृतसर के जलियाँवाला बाग की सभा में अनेक शान्त और निर्दोष व्यक्ति जेनरल डायर की गोलियों से भून दिये गये। लोगों को नाक के बल चलवाया गया। ऐसा मालूम होता था मानो मध्ययुग का बर्बर शासन पंजाब की भूमि पर उतर आया हो और नंगा नाच रहा हो। इस कत्लेआम की बातें एवं डायर की काली करतूतें ब्रिटिश जाति के मुख पर स्याही की भांति पुत गई हैं और सदा के लिए पुत गई हैं। खैर; देश-विदेश में इन कारनामों के कारण हाहाकार मच गया; बड़ा व्यापक विरोध हुआ। फलतः सरकार की ओर से जाँच के लिए हण्टर-कमेटी बैठी। राष्ट्रीय महासभा ने उसका बहिष्कार किया और स्व० मोतीलाल जी, देशबंधु, गाँधी जी, अब्बास तैयब जी और श्री जयकर की एक स्वतंत्र कमेटी जाँच के लिए नियुक्त की। इस कमेटी ने बड़ी सावधानी से जाँच की और जब इसकी रिपोर्ट निकली तो ऐसे रोमांचकारी कृत्यों का पता लगा जो मानव-जाति के इतिहास की अत्यन्त घृणित घटनाओं में गिने जायँगे।

साबरमती आश्रम में, 'यंग इण्डिया' के प्रकाशक श्री शंकरलाल बैंकर के साथ, गिरफ्तार कर लिये गये और 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित चारों लेखों को लेकर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। ११ तारीख को पेशी हुई। मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ। १८ मार्च को सेशन जज श्री सी. यम. ब्रूमफील्ड के सामने मुकदमा पेश हुआ। इस मुकदमे की तुलना ईसा मसीह के मुकदमे से की गई है। गाँधी जी ने स्वयं जुर्म कबूल कर लिया। जज ने उनके दर्शन से अपने को धन्य माना पर कर्तव्य-वश ६ वर्ष की सजा दी। जेल में गांधी जी का जीवन सच्चे सत्याग्रही और तपस्वी का जीवन था।

खादी-आन्दोलन

देश के अँधेरे कोने में पड़े हुए चर्खे को सार्वजनिक जीवन में लाकर भारत के सब से शक्तिमान धन्धे को पुनर्जीवित करने एवं हजारों-लाखों गरीब भाई-बहनों के पेट में रोटी डालने का श्रेय गाँधी जी को ही है। अपनी सहकर्मिणी गंगा बहन की सहायता से असहयोग-आन्दोलन के पहले इन्होंने गांवों से चर्खे को खोज निकाला। और धीरे-धीरे इतना विस्तृत खादी-आन्दोलन देश में खड़ा कर दिया। आज उसका देशी उद्योग में जो महत्व है, उसे सब जानते हैं। वह स्वयं तो अपने एवं अपने साथियों के लिए नित्य कताई को यज्ञ एवं व्रत रूप मानते हैं।

× × ×

महात्मा गांधी के जेल जाने के बाद धीरे-धीरे आन्दोलन शिथिल हो गया। देश में शुरू से एक ऐसा दल था जो राष्ट्रीय कार्य में कौंसिलों का उपयोग करना चाहता था। फलतः देशबन्धु एवं मोती-लाल जी ने स्वराज्य दल की नींव डाली। इससे बहुत दिनों तक कांग्रेस में बड़ी दलबन्दी रही। और परस्पर कलह का तूफान उठ खड़ा हुआ पर बाद में समझौता हो गया।

गांधी जी को जेल में रहते प्रायः दो वर्ष बीते थे कि उनका

स्वास्थ्य खराब हो गया और धीरे-धीरे पेट में फोड़ा (अपेंडाइसिटीज) हो गया। अवस्था ऐसी हो गई थी कि सरकार ने आप्रेशन की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने से इन्कार कर दिया। गाँधी जी ने अपनी जिम्मेदारी पर सासून अस्पताल (पूना) में कर्नल मैडक से आप्रेशन कराया। यह जनवरी सन् १९२४ की बात है। इसके बाद ही वह छोड़ दिये गये।

पेट में फोड़ा और रिहाई

पर इस समय तक देश की अवस्था बहुत खराब हो गई थी। जहां हिन्दू-मुसलमानों में एकता की मधुर कल-कलस्विनी बहती थी वहाँ ईर्ष्या-द्वेष का तूफान आया। अनेक स्थानों में दंगे हुए। इनका प्रभाव गाँधी जी के हृदय पर पड़ा। उनके दिल में बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने राष्ट्र के प्रायश्चित्त-स्वरूप स्वयं २१ दिन के उपवास की घोषणा की। ११ सितम्बर १९२४ को यह घोषणा प्रकाशित हुई थी जिसे पढ़कर सारा भारत काँप गया। इस निश्चय की घोषणा, उन्हीं के शब्दों में यह है—

उपवास की घोषणा

"हाल की घटनाएँ मेरे लिए असहनीय साबित हुई हैं। मेरी असहायता उससे भी असहनीय है। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि जब कोई बहुत अस्थिर एवं दुखी हो और उस दुख को दूर न कर पाता हो तो उसे उपवास एवं प्रार्थना का आश्रय लेना चाहिए। मैंने अपने अत्यन्त प्रिय जनों के सम्बन्ध में भी ऐसा किया है।

"अब तो मैं यह भी देखता हूँ कि मेरे हर तरह से लिखने और कहने से भी हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता नहीं हो सकती। इसीलिए मैं आज से २१ दिन का उपवास आरम्भ करता हूँ। ८ अक्तूबर बुधवार को वह पूरा होगा। अनशन के दिनों में पानी और उसके साथ नमक लेने की छूट मैंने रखी है। यह अनशन प्रायश्चित्त के रूप में भी है और प्रार्थना के रूप में भी। यदि केवल प्रायश्चित्त रूप होता तो इसे सर्व-साधारण के सामने प्रकाशित करने की आवश्यकता न होती परन्तु इस बात को प्रकट करने का केवल एक

पास जुर्माना देने के लिए अपना कुछ नहीं है। इसलिए जिसने भी जुर्माना अदा किया हो उसे हम अपना मित्र नहीं कह सकते।'

इधर ये सब घटनाएँ हो रही थीं, उधर मई १६२६ में इंग्लैंड में पार्लमेण्ट का चुनाव हुआ। मजूर दल के हाथों में शासन आ गया।

साइमन-कमीशन

इससे भारत के लोगों की आशाएँ बढ़ गईं क्योंकि वह सदा से भारतीय आकांक्षाओं के साथ मौखिक सहानुभूति दिखाता आ रहा था। पर उसने भारत के विषय में कुछ दूरदर्शिता न दिखाई। इधर कांग्रेस की दी हुई एक साल की अवधि पूरी होने को आ रही थी। लोगों में असन्तोष बढ़ रहा था। इस समय वाइसराय लार्ड इरविन सलाह-मशविरे के लिए खास तौर पर इंग्लैंड गये थे। वहां से लौटकर ३१ अक्टूबर १६२६ को उन्होंने यह घोषणा की कि 'भारत में ब्रिटिश नीति का उद्देश्य धीरे २ भारत को उपनिवेशों की पंक्ति में लाना है।' यह भाषण गोल-मोल था; इससे लोगों को सन्तोष कैसे होता ? उधर भारतीय सुधार की समस्याओं की जाँच करने के लिए साइमन कमीशन बैठाया गया; उसमें एक भी भारतीय को न रखने के कारण उसका देशव्यापी विरोध एवं बहिष्कार हुआ। इस विरोध में लिबरल भी शामिल हुए। कांग्रेस के नेता चाहते थे कि वाइसराय या ब्रिटिश सरकार यह विश्वास दिला दे कि कमीशन की रिपोर्ट निकलने के बाद जो गोलमेज़ सम्मेलन ('राउण्ड-टेबुल कान्फ्रेन्स') होगा उसका उद्देश्य स्वतंत्र औपनिवेशिक मर्यादा के शासन-तंत्र की योजना बनाना ही होगा और सरकार उसका समर्थन करेगी। गाँधी जी इस सम्बन्ध में २३ दिसम्बर १६२६ को वाइसराय से मिले भी पर कुछ तय नहीं हुआ। फलतः दिसम्बर के अन्त में लाहौर में कांग्रेस हुई। वे तूफानी दृश्य देखने लायक थे। कांग्रेस ने अपने वचन के अनुसार ३१ दिसम्बर को आधी रात तक प्रतीक्षा की। जब सरकार की ओर से कोई आश्वासन नहीं मिला तो उसने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास कर दिया।

कांग्रेस ने कौंसिलों के वहिष्कार का प्रस्ताव भी पास किया।

गाँधी की ११ शर्तें

२५ जनवरी १६३० को असेम्बली में वाइसराय का भाषण हुआ। २६ जनवरी को सारे देश में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया जिसमें स्वतंत्रता की घोषणा दुहराई गई। यह कांग्रेस के निश्चय पर देश की स्वीकृति की मुहर थी। वाइसराय के भाषण के उत्तर में गांधी जी ने उनके सामने ११ मांगें रखीं। जिनमें मुख्य ये थीं—

१. मादक द्रव्यों का पूर्ण निषेध।
२. विनिमय दर १ शिं० ६ पें० से १ शिं० ४ पें० कर दी जाय।
३. जमीन के लगान में कम से कम ५० प्रतिशत की कमी।
४. नमक-कर हटा दिया जाय।
५. सैनिक-व्यय कम से कम ५० प्रतिशत कम कर दिया जाय।

ये सब शर्तें गाँधी जी ने पारसी श्री बोमन जी को भी लिख भेजी थीं जो पहिले से ही प्रधान मंत्री श्री रैमसे मैकडोनल्ड से समझौते की बातें कर रहे थे।

१९३० का महान् सत्याग्रह-आन्दोलन

पर इन बातों से क्या होना जाना था? गाँधी जी इसे जानते थे। अतः उन्होंने राष्ट्र को तैयार करना शुरू किया। १५ फरवरी को

वाइसराय का पत्र

अहमदावाद में कांग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक हुई। उसने महात्मा जी को आन्दोलन के सम्बन्ध में सर्वाधिकार दे दिया। गाँधी जी का पहला काम वाइसराय को पत्र लिखना था। यह पत्र उन्होंने रेजीनाल्ड रेनाल्ड नामक एक अंग्रेज़ युवक के हाथ भेजा। इस कार्य से उन्होंने प्रकट किया कि अंग्रेजों से उनका व्यक्तिगत कोई द्वेष नहीं है; लड़ाई शासन-प्रणाली से, सरकार से, है। इस पत्र में इन्होंने वाइसराय से भारत की माँगों के विषय में अन्तिम अपील की थी और कहा था कि 'यदि १० मार्च तक इसका उत्तर न मिला तो ११ मार्च को नमक कानून भंग करने के लिए मैं कुछ

साथियों के साथ आश्रम से प्रस्थान करूँगा। वाइसराय ने अपने उत्तर में गांधी जी के इस निश्चय पर खेद प्रकट किया और ऐसे खतरनाक पथ पर न चलने की चेतावनी दी। महात्मा जी ने उस पर टीका करते हुए लिखा—मैंने घुटने टेककर रोटी की भिक्षा माँगी थी पर मुझे उत्तर में पत्थर का टुकड़ा मिला। अंग्रेज जाति केवल बल के आगे ही झुकना जानती है.....।"

गाँधी जी ने इस यात्रा के लिए अश्रम के केवल ऐसे आदमियों को चुना था जो प्रत्येक दशा में अहिंसात्मक रह सकते थे। इस टुकड़ी में सब प्रान्तों के लोग लिये गये थे। गाँधी ने प्रतिज्ञा की कि स्वराज्य मिलने के पहिले अब मैं रहने के लिए आश्रम को न लौटूँगा। १२ मार्च को, ७६ साथियों के साथ दाँड़ी-यात्रा शुरू हुई। वह अद्‌भुत् दृश्य था। किसी की समझ में न आता था कि यह दुबला पतला मनुष्य चन्द निरस्त्र साथियों को लेकर ब्रिटिश साम्राज्य के साथ कैसे लड़ाई करेगा। जहाँ-जहाँ यह दल पहुँचता तहाँ-तहाँ सभाएँ होतीं। गांधी जी लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाते। दाँड़ी पहुँचने तक तो सारा देश उत्साह से भर गया।

वह महान् यात्रा

इसी बीच २१ मार्च को भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई जिसने देश को आदेश दिया कि महात्माजी की गिरफ़्तारी के बाद या ६ अप्रैल से (जो पहिले हो) सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय। ६ अप्रैल को दाँड़ी में गांधी जी एवं उनके दल ने नमक-कानून भंग किया। सारे देश में सत्याग्रह की धूम मच गई। गिरफ़्तारियाँ होने लगीं। अनेक स्थानों में पुलीस ने नमक बनाने में काम आने वाले बरतनों को फोड़ दिया। कहीं जलता नमक सत्याग्रहियों पर डाला गया पर इन सब को स्वयंसेवकों ने वीरतापूर्वक सहन किया। लाठी चार्ज तो साधारण बात हो गई। बम्बई ने इस बार कमाल कर दिया। सैकड़ों मन नमक समुद्री क्यारियों

कानून भंग

गाँधी जी की गिरफ्तारी

पर धावा बोलकर सत्याग्रही उठा लाते और और बाजार में खुले आम बेचते। पैदल एवं अश्वारोही पुलीस की मार से इस कार्य में कितने ही घायल हुए। एक दो जगह गोलियाँ भी चल गई। ५ मई को गाँधी जी गिरफ़्तार हुए पर उससे देश में और उत्साह फैल गया। अभी तक केवल नमक-कानून भंग किया जा रहा था; अब कई प्रान्तों में जंगल सत्याग्रह ने जोर पकड़ा। अब अनेक प्रकार के अनुचित कानून तोड़े जाने लगे; कहीं जंगल सत्याग्रह, कहीं नमक सत्याग्रह, कहीं जब्त पुस्तकों की बिक्री, कहीं मादक द्रव्य एवं अँग्रेजी माल पर पिकेटिंग करके लोग धड़ाधड़ जेल जा रहे थे। सरकार दमन पर तुल गई थी। विशेष कानून (आर्डिनेंस) बना कर अखबारों के मुख बन्द कर दिये गये; राष्ट्रीय संस्थाएं गैर-कानूनी करार दी गईं। पर इन सब बातों से आन्दोलन दब न सका। स्त्रियों में इस आन्दोलन से ऐसी जागृति हुई और उन्होंने इस वीरता से अपना हिस्सा लड़ाई में दिया कि भारतीय इतिहास के अत्यन्त गौरवपूर्ण पृष्ठों में उसका वर्णन किया जायगा। जो काम वर्षों का था वह दिनों में हुआ। स्त्रियों ने परदा फाड़ फेंका और उच्च घरांने की कोमलाङ्गी बहनें मैदान में निकल आईं। इससे भारतीय नारी की अत्यन्त तेजस्विनी मूर्त्ति हमारे बीच प्रकट हुई। उसने अपनी वीरता, कष्ट-सहिष्णुता और त्याग से पुरुषों को लज्जित कर दिया। यह उन्हीं का उत्साह था जिसने असंभव को संभव कर दिया। शराब ताड़ी इत्यादि की बिक्री नाम-मात्र को रह गई। बहुत जगह तो इनके ठेके ही नहीं उठे और जहाँ उठे भी वहाँ बहुत थोड़ी बोली में। कितनी जगह—जैसे दिल्ली में—शराब की दुकानों पर ऐसी पिकेटिंग हुई कि वे प्रायः बंद ही रहीं। विदेशी कपड़ों की बिक्री बिलकुल घट गई। ज्यादातर प्रान्तों में तो वस्त्र-विक्रेताओं का विदेशी स्टाक कांग्रेस की मुहर लगा कर बन्द कर दिया गया। इस समय तो ऐसा मालूम होता था मानों देश में कांग्रेस का ही राज है। सरकार को करोड़ों रुपये का घाटा होने लगा। उधर खीझ कर वह आर्डिनेंस

पर आर्डिनेंस निकालने लगी। पर इससे आन्दोलन में कोई कमी न हुई। इस समय सप्रू-जयकर के प्रयत्नों से जेल में ही गाँधी जी, मोतीलाल जी, जवाहरलाल जी इत्यादि में सलाह-मशविरा हुआ। अन्त में वाइसराय ने कांग्रेस-कार्यकारिणी के सब सदस्यों को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। इस समय तक करीब एक लाख आदमी जेल जा चुके थे। अस्तु; अन्त में गाँधी जी और

गाँधी-इर्विन समझौता

लार्ड इरविन की कई दिन की बात-चीत के बाद सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता हो गया। सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये; कराची में धूम-धाम से कांग्रेस हुई और उसके निश्चयों के अनुसार कांग्रेस के एक-मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गाँधी जी द्वितीय गोल मेज-सम्मेलन में सम्मिलित हुए।

पर सरकार की मनोवृत्ति तो वही थी। उसमें कोई परिवर्त्तन न हुआ था। अकेले लार्ड इरविन के भले आदमी होने से भारत-शासन में क्या उलट-फेर हो सकती थी। उधर गाँधी जी

गाँधी जी इंग्लैंड में

इंग्लैंड गये, इधर युक्तप्रान्त के किसानों की लगान में कमी करने की मांगों को ठुकरा कर, तथा सीमाप्रान्त और बंगाल में आर्डिनेंस जारी कर, सरकार ने स्थिति विषम कर दी। इससे युक्तप्रान्त में किसानों को आर्थिक सत्याग्रह जारी करना पड़ा। इतने दिनों तक महात्मा जी गोलमेज-सम्मेलन के सम्बन्ध में इंग्लैंड रहे। यों तो कितने ही भारतीय प्रतिनिधि सम्मेलन में गये थे पर जिस निर्भीकता से गाँधी जी ने काम लिया और विषय एवं परिस्थिति को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने की जो आकांक्षा एवं उत्कंठा उन्होंने प्रकट की, वह किसी दूसरे में देखी न गई। इंग्लैंड में उनका खूब स्वागत हुआ। जनता ने, मज़दूरों ने उन्हें खूब अपनाया। बड़े बड़े मनीषी एवं प्रत्येक क्षेत्र के प्रतिष्ठित पुरुषों के सम्पर्क में आये पर इन सब बातों के होते हुए भी उन पर स्पष्ट हो गया कि सरकार भारत को वास्तविक अधिकार देने को उत्कण्ठित नहीं है, कोरे शब्द-जाल को

ले कर वह चलती है। वहाँ से वह बहुत निराश होकर लौटे। वस्तुतः वह युरोप के अन्य देशों में भी जाना चाहते थे पर भारत से उनके शीघ्र लौट आने के लिए पत्र और तार मिल रहे थे अतः फ्रांस में प्रसिद्ध कलाविद और विचारक रोम्याँ रोलाँ से मिल कर वह भारत लौट आये।

लौटने पर

गाँधी जी के लौटने पर तुरन्त ही कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक बम्बई में करने का निश्चय हुआ था। यद्यपि युक्तप्रान्त में किसानों का सत्याग्रह चल रहा था और उधर कई प्रान्तों में दमन भी चल रहा था पर गाँधी जी की इच्छा शान्तिपूर्वक दोनों पक्षों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने की थी। इसी समय कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में शरीक होने के लिए बम्बई जाते समय जवाहरलाल जी गिरफ़्तार कर लिये गये। उन पर इलाहाबाद न छोड़ने की आज्ञा तामील की गई थी पर यह अनुचित थी क्योंकि उनकी पत्नी बम्बई में बहुत ज्यादा बीमार थीं। दूसरे कांग्रेस के प्रधान मंत्री होने के कारण कांग्रेस-सम्बन्धी अधिकांश पत्र उन्हीं के पास थे। युक्तप्रान्त की समस्या पर ठीक तौर से विचार करने के लिए युक्तप्रान्तीय कांग्रेस क़मेटी के अध्यक्ष श्री शेरवानी भी बम्बई जा रहे थे। उन्हें भी जवाहरलाल की भांति ही उसी जुर्म में गिरफ़्तार किया गया। इससे बड़ी उत्तेजना फैली। लोगों ने समझा कि सरकार अपने वादे पर स्थिर नहीं है और दमन पर उतारू हो गई है। इतना

फिर सत्याग्रह

होते हुए भी गाँधी जी ने वाइसराय (लार्ड विलिंगडन) से मिलकर देश एवं सरकार की स्थिति पर बातचीत करने की इजाज़त मांगी। वह इजाज़त भी नहीं मिली। वस्तुतः सरकार ने लड़ाई की सब तैयारी पहिले ही से कर ली थी। मजबूर होकर कांग्रेस को फिर सत्याग्रह आन्दोलन जारी करना पड़ा। इस बार सरकार ने बड़े वेग एवं कड़ाई से दमन आरम्भ किया। न केवल कांग्रेस संस्थाएँ, वरं सब प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाएँ जिनसे किसी

प्रकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता कांग्रेस के काम में मिलती थी, गैरकानूनी करार दे दी गईं। बहुतेरे छात्र संघ, स्वदेशी संघ, खादी भण्डार तक इस लपेट में आ गये। गैर-कानूनी करार देकर ही सरकार रह गई हो सो बात भी नहीं, इनमें से अधिकांश पर उसने कब्जा कर लिया। सत्याग्रहियों को भाड़े पर मकान देने के लिए कितने ही आदमी गिरफ़्तार कर लिये गये। हड़ताल करने पर कितने ही दूकानदारों पर जुर्माना किया गया। अखबारों में सत्याग्रह की खबरें छापना, सत्याग्रहियों की तस्वीर छापना जुर्म करार कर दिया गया। सुव्यवस्था के शासन की जगह भय और आतंक का राज्य शुरू हुआ। यह कांग्रेस के संघटन एवं जनता पर उसके अधिकार का द्योतक है कि ऐसे घोर दमन के युग में भी बराबर आन्दोलन चलता रहा। डेढ़ वर्ष में (१९३३ की मई तक) साठ हज़ार से अधिक आदमी जेल गये।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अवस्था की खराबी, किसानों की दुर्बल स्थिति, देश में व्यापार की गिरी दशा के कारण १९३३ से सत्याग्रह आन्दोलन की गति धीमी पड़ने लगी। इसका मुख्य कारण नेताओं की अनुपस्थिति थी। और दूसरा कारण यह कि सरकार ने युक्तप्रान्त में किसानों की इच्छा की बहुत करके पूर्ति कर दी। फिर इतने लम्बे युद्धमें सदा एक से उत्साह की आशा कैसे की जा सकती है? फिर इस बार आन्दोलन में प्रदर्शन के अभाव एवं कानूनी बाधाओं के कारण सच्ची खबरें न मिलने से भी जनता अन्धकार में रही। तब भी किसी न किसी रूप में आन्दोलन हुआ। १९३३ में कलकत्ता में श्रीमती नेली सेन गुप्त की अध्यक्षता में कांग्रेस हुई।-मालवीय जी इसके अध्यक्ष चुने गये थे। पर वह रास्ते में ही गिरफ़्तार कर लिये गये। इस सम्बन्ध में और भी बहुत सी गिरफ़्तारियाँ हुईं। पर प्रायः सब आदमी कुछ दिनों बाद छोड़ दिये गये। कांग्रेस का आन्दोलन तो चलता रहा पर कानूनी बाधाओं के

१९३३ में

कारण उसका रूप बहुत विकृत एवं गुप्त हो गया।

× × ×

अस्पृश्यता को गाँधी जी सदा से हिन्दू धर्म एवं मनुष्यता का कलंक मानते रहे हैं। उनका कहना है कि सवर्ण हिन्दुओं ने अछूतों के साथ लज्जाजनक एवं घृणास्पद व्यवहार करके अपने को नीचे गिरा लिया है, उन्हें इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। जहाँ तक गाँधी जी का सम्बन्ध है इन्होंने अपने जीवन में कभी अस्पृश्यता को स्थान नहीं दिया। आश्रम में हरिजनों को कुटुम्बी की तरह उन्होंने अपनाया था। उनकी सेवा इन्हें बड़ी प्रिय थी। इनके प्रयत्नों से कांग्रेस ने १९२४ में अस्पृश्यता-निवारण को अपना एक मुख्य विधायक कार्य-क्रम बनाया था। धीरे-धीरे काम चल रहा था पर सन्तोषजनक न हुआ। १९३१ में जब वह गोलमेज़ सम्मेलन में गये थे तब (१३ नवम्बर सन् ३१) अल्प-संख्यक जातियों के विशेष प्रतिनिधित्व पर बोलते हुए उन्होंने हरिजनों को—अछूतों को—अलग प्रतिनिधित्व देकर सदा के लिए हिन्दुओं से उनका अलगाव कर देने की नीति की जबर्दस्त टीका की और यह भी कह दिया कि ऐसे किसी प्रयत्न का मैं प्राणों की बाजी लगाकर भी विरोध करूँगा। पर उस समय किसी ने इस बात पर ज्यादा ध्यान न दिया था और सरकार ने तो बिलकुल न दिया। इधर दूसरे सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में गाँधी जी जब जेल में थे तो उन्हें पता चला कि सरकार जातिगत प्रतिनिधित्व के बारे में निर्णय करेगी। इसलिये ११ मार्च को उन्होंने भारत-सचिव सर सेमुएल होर को पत्र लिखा जिसमें अस्पृश्यों की समस्या पर विशेष चिन्ता प्रकट करते हुए यह सूचना दी कि सरकार यदि अपने निर्णय में इन 'अस्पृश्य' जातियों के लिए अलग प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगी तो मैं अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार आमरण उपवास शुरू करूँगा।

हरिजन सेवा

अगस्त में ब्रिटिश सरकार की ओर से श्री रैमसे मैकडानल्ड का

निर्णय प्रकाशित हुआ, जिसमें अस्पृश्यों के लिए गोलमोल योजनाएँ थीं। नमक मिर्च भर लगा था पर रूप वही था जिसके विरुद्ध गाँधी जी ने अपनी सम्मति प्रकट की थी इसलिए १८ अगस्त को उन्होंने प्रधान मंत्री को पत्र लिखकर सूचित किया कि २१ सितम्बर से मेरा आमरण अनशन शुरू होगा। और तब तक वह भंग न होगा जब तक कि उस निर्णय को सरकार बदल न दे। प्रधान मंत्री ने भी गोलमोल उत्तर दिया और निर्णय में परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया। इसलिए २० सितम्बर को १२ बजे दिन से यह आमरण उपवास—प्रायोपवेशन—अब्बास तैयब जी की लड़की रैहाना-द्वारा बनाये हुए निम्नलिखित भजन के साथ प्रारम्भ हुआ—

प्रायोपवेशन का आरम्भ

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है ॥ उठ०॥
टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा।
और अपने रब से ध्यान लगा ॥
यह प्रीत करन की रीति नहीं, रब जागत है तू सोवत है !
उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है ?
जो कल करना है आज कर ले।
जो आज करना है अब कर ले ॥
जब चिड़ियों ने चुँग खेत लिया, तब पछताये क्या होवत है ?
उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?"

ज्योंही सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ सारे भारत में तहलका मच गया। मित्रों का आग्रह गाँधी जी को उनके पथ से विचलित न कर सका। उधर सरकार भी तनी हुई थी। इस बीच एक मात्र उपाय यही था कि उच्च वर्ग के हिन्दुओं एवं अछूतों के विभिन्न दलों के नेताओं पर परस्पर महात्मा जी के सन्तोष के लायक समझौता हो जाय क्योंकि सरकार ने अपना

हलचल

निर्णय करते समय कहा था कि यह निर्णय तब तक के लिए है जब तक तत्सम्बन्धी जातियों या दलों के नेता स्वयं कोई समझौता न कर लें। बड़ी दौड़-धूप के बाद पूना में सवर्ण हिन्दू नेताओं और अछूत नेताओं के बीच एक समझौता हुआ। इसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में भारत में कुल १४८ (बंगाल ३०, बम्बई सिन्ध १५, मद्रास ३०, युक्तप्रान्त २०, पञ्जाब ८, बिहार-उड़ीसा १८, मध्यप्रान्त २०, आसाम ७) सदस्य चुनने का अधिकार अस्पृश्य जातियों को दिया गया और संयुक्त निर्वाचन की शर्त रखी गई। यद्यपि इसमें भी स्थान सुरक्षित रखा गया था और यह समझौता भी गांधी जी की शर्तों की पूर्णतः पूर्ति नहीं करता था फिर भी इसकी अन्तःभावना उनकी माँग के अनुकूल थी। इसलिए उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया और २६ सितम्बर को सरकार ने भी इसे स्वीकार कर स्वीकृति की सूचना गांधी जी को दे दी। यह सूचना गांधी जी को ४ बजे मिली। इस समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी पहुँच गये थे। उनके तथा अन्य मित्रों एवं स्नेहियों के सामने २६ सितम्बर को ५ बजे गांधी जी ने उपवास भंग किया। सरकार ने माता कस्तूरबा को उपवासकाल में गांधी जी की सेवा के लिए पहिले ही छोड़ दिया था। उपवास-भंग के लिए श्रीमती कमला नेहरू ने दो मीठे नीबुओं का रस निचोड़ कर कस्तूरबा को दिया। उन्होंने गांधी जी को दिया। उसे कांपते हाथों से धीरे-धीरे गांधी जी पी गये। इस प्रकार यह उपवास समाप्त हुआ। इसके बाद अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन करने के लिए गांधी जी को सब प्रकार की सुविधा भी जेल में ही सरकार ने दे दी और जेल के भीतर से ही वह आन्दोलन चलाने लगे। इसके बाद बम्बई में हिन्दू नेताओं की एक सभा हुई थी और उसके निश्चय के अनुसार श्री घनश्यामदास बिड़ला की अध्यक्षता में भारतीय अस्पृश्यता-निवारण संघ (जिसका नाम बदल कर पीछे हरिजन सेवा संघ कर

पूना का समझौता

दिया गया) स्थापित हुआ। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में रखा गया और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रान्तीय संघों तथा उनकी देखरेख में जिला एवं नगर संघों का निर्माण हुआ। इस प्रकार गाँधी जी की प्रेरणा से इस दिशा में संघटित कार्य शुरू हुआ। जेल के अन्दर से गाँधी जी उसका नेतृत्व करते रहे। सैकड़ों मन्दिर और कुएँ अछूतों—हरिजनों—के लिए खोल दिये गये; जगह-जगह स्कूल खोल दिये गये। उनकी गन्दी बस्तियों के सुधार की योजनाएं बनाई गईं।

कई राज्यों ने घोषणा निकालकर उनकी असुविधाएँ दूर कर दीं। जो काम युगों में न हो सका था वह महीनों में हुआ।

पर उन्होंने देखा कि यह आन्दोलन भी पूर्ण सच्चाई एवं पवित्रता के साथ नहीं चल रहा है। सवर्ण हिन्दुओं का दिल जैसा बदलना चाहिए, नहीं बदला है। और कई कार्यकर्ता शुद्ध भावना से इसमें शामिल नहीं हुए हैं। इन बातों से उन्हें स्वभावतः ही दुःख हुआ और इसे अपनी आत्मिक अपूर्णता मानकर उन्होंने बिना किसी शर्त के ८ मई १९३३ से २१ दिन का उपवास करने की घोषणा की। उन्होंने यह भी प्रकट कर दिया 'किसी खास कारण से मैं यह उपवास नहीं कर रहा हूँ। इसलिए इसमें पहिले की भाँति कोई शर्त नहीं रखी गई है। इसे मैं अपने आत्मिक विकास के लिए ही कर रहा हूँ।' पर ऊपर जो कारण लिखे हैं वे इसके मूल में अवश्य काम करते थे। गाँधी जी का स्वास्थ्य अच्छा न था। पिछली बार के उपवास में ६ दिन में ही उनकी हालत खराब हो गई थी। इसलिए न सरकार को, न जनता को यह आशा थी कि वे २१ दिन का उपवास कर सकेंगे। सरकार ने उन्हें छोड़ दिया। छूटने पर भी पूना ('पर्णकुटी' नाम के संगमरमर के विशाल प्रासाद) में रहकर उन्होंने अपना उपवास जारी रखा। इस बार भी प्रभु ने उन्हें बचा लिया और इस तपस्या की आग से वह चमकते खरे सोने की तरह बाहर निकले।

फिर अनशन

× × ×

जब उन्होंने उपवास शुरू किया तो सारे देश के प्राण उनमें अटक गये। लोगों का सारा ध्यान उधर ही खिंच गया। देश में हाहाकार मच गया। इसलिए गाँधी जी ने कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष

सत्याग्रह स्थगित

श्री अणे से अनुरोध किया कि वह छः सप्ताह के लिए आन्दोलन स्थगित कर दें। दूसरी ओर सरकार से भी उन्होंने अनुरोध किया कि अभी सम्मानपूर्ण समझौते के लिए जगह है। और वह चाहे तो वहाँ से फिर बात-चीत आरम्भ हो सकती है जहाँ से गोलमेज सम्मेलन से लौटने पर टूटी थी। पर सरकार ने इस पर तब तक विचार करने से इनकार कर दिया जब तक कि कांग्रेस स्थायी रूप से सत्याग्रह का पथ न छोड़ दे। इसके साथ ही गाँधी जी ने अपने वक्तव्य में यह भी कहा कि जिस प्रकार गुप्त रीति से आन्दोलन चलाया जाता रहा है, वह सत्याग्रह की प्रेरणा के विपरीत है। खैर, स्थानापन्न राष्ट्रपति ने ६ सप्ताह के लिए आन्दोलन स्थगित कर दिया। पर महात्मा जी की दुर्बलता इतनी बढ़ गई थी कि इस अवधि के बाद भी वह देश-दशा पर भलीभाँति विचार करने के योग्य न हुए। इसलिए ६ सप्ताह अर्थात् ३१ जुलाई १९३३ तक के लिए आन्दोलन फिर स्थगित कर दिया गया।

गाँधी जी की अवस्था सुधरने पर १४ जुलाई को पूना में कांग्रेस के नेताओं तथा प्रान्तीय प्रतिनिधियों की एक निजी तथा गुप्त बैठक हुई। इसमें देश की अवस्था पर विचार किया गया। अन्त में कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री अणे ने एक वक्तव्य निकालकर—

१—सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

२—सब कांग्रेस संस्थाएँ तोड़ दी। (क्योंकि आन्दोलन गुप्त रीति से ही चल सकता था।)

३—अपनी अपनी जिम्मेदारी पर व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखने का आदेश किया।

× × ×

इस निश्चय के बाद गाँधी जी ने अपने १८ वर्ष के सतत् प्रयत्न और परिश्रम से निर्मित सत्याग्रह आश्रम को तोड़ दिया। उनका यह कार्य उनके उज्ज्वल त्याग का सबसे बड़ा नमूना है। यह चीज़ उन्हें संसार में सबसे ज्यादा प्रिय थी क्योंकि यह उनके जीवन की प्रयोगशाला थी। तोड़ने की सूचना उन्होंने बम्बई सरकार को दे दी और अपना यह निश्चय भी उसे लिख भेजा कि १ अगस्त को मैं अपने आश्रम के ३२ साथियों (१६ स्त्रियाँ, १६ पुरुष) के साथ गुजरात के 'रास' गाँव की ओर प्रस्थान करूँगा, वहाँ जाकर किसानों की स्थिति का अवलोकन करूँगा और आवश्यकतानुसार उनको सलाह देना हमारा उद्देश्य है। ३१ की रात को डेढ़ बजे के लगभग सब गिरफ़्तार कर लिये गये। गाँधी जी पूना (यरवदा जेल) भेजे गये। बाद में ४ अगस्त को जेल से छोड़ दिये गये। और उनको आज्ञा दी गई कि पूना शहर की सीमा में चले जाँय और उस सीमा के बाहर न जाँय। गाँधी जी ने आज्ञा भंग की। फलतः वह गिरफ्तार किये गये; जेल में उनका मुकदमा हुआ और एक वर्ष की सादी सजा हुई।

निश्चय के बाद

गाँधी जी की गिरफ़्तारी के फलस्वरूप सभी प्रांतों में व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन जोरों से चल पड़ा। कुछ ही सप्ताहों के भीतर हजारों कांग्रेस कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार हो गये। श्री अणे अपने १३ साथियों के साथ अकोला से कूच करते हुए गिरफ़्तार किये गये। आंदोलन अगस्त १९३३ से मार्च १९३४ तक चलता रहा।

गाँधी जी अब एक राजनैतिक बंदी थे, अतः सरकार ने अब उन्हें जेल में हरिजन-कार्य चलाने की सुविधाएँ देने से इन्कार कर दिया। इस पर गाँधी जी ने १६ अगस्त से उपवास करना शुरू किया। उपवास के पांचवे दिन, २० अगस्त को उनकी हालत बिगड़ने लगी और वह बंदी के

फिर उपवास

रूप में सासून अस्पताल ले जाये गये। २३ अगस्त को यह स्पष्ट हो गया कि उनका जीवन खतरे में है और सरकार ने उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया।

सितम्बर तक गांधी जी का स्वास्थ्य इस काबिल हुआ कि वह कोई सार्वजनिक वक्तव्य दे सकें। उन्होंने बहुत प्रार्थना तथा सोच-विचार के बाद यह निश्चय किया कि वह सजा की अवधि पूरी होने, अर्थात्, ३ अगस्त १९३४, तक सत्याग्रह नहीं करेंगे और अपना समय हरिजन-कार्य में बितायेंगे। १९२४ में पेट में फोड़े के आपरेशन के बाद सजा की अवधि पूरी होने से पहले छोड़ दिये जाने पर भी उन्होंने ऐसा ही निश्चय किया था।

हरिजन-यात्रा

अस्पृश्यता-निवारण के लिए गांधी जी ७ नवम्बर को सत्याग्रह आश्रम, वर्धा से यात्रा के लिए निकले। माता कस्तूरबा साथ में सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिए जाती हुई गिरफ़्तार कर ली गईं और उन्हें छठवीं बार २ साल की कैद हुई। गांधी जी ने अपनी यात्रा जारी रखी और १० महीनों में उन्होंने हरिजन-समस्या के सम्बन्ध में राष्ट्र को जाग्रत कर दिया। इस यात्रा में उन्हें हरिजनोद्धार के लिए ८ लाख रुपये मिले।

भूकम्प-पीड़ितों की सहायता

गांधी जी जिस समय दक्षिण में यात्रा पर थे, उन्हें उत्तरी विहार में भयंकर भूकम्प की खबर मिली। १५ जनवरी १९३४ की रात में २। बजे उत्तरी विहार में ऐसा भयंकर भूकम्प आया कि हजारों आदमी मर गये और गांव के गांव तथा नगर के नगर ध्वस्त हो गये। गांधी जी तत्काल विहार रवाना हो गये और उन्होंने बाबू राजेन्द्र प्रसाद के साथ भूकम्प पीड़ित क्षेत्रों का दौरा शुरू कर दिया। उन्होंने भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को सरकार से पूर्ण सहयोग करने के लिए कहा।

७ अप्रैल को गांधी जी ने वैयक्तिक सत्याग्रह भी स्थगित कर

दिया। एक वक्तव्य में उन्होंने सत्याग्रह का अर्थ समझाते हुए कहा—"मैं महसूस करता हूँ कि जनता को सत्याग्रह का पूरा संदेश नहीं मिला है, क्योंकि वह अशुद्ध रूप में उसके पास पहुँचाया जाता है। शुद्ध सत्याग्रह का असर दोनों (आतंकवादियों और शासकों) पर होना चाहिए। इसकी परीक्षा के लिए सत्याग्रह केवल एक अधिकारी व्यक्ति तक सीमित रहना चाहिए। इसका प्रयोग अब तक नहीं हुआ। पर अब होना चाहिए।" इस प्रकार वैयक्तिक सत्याग्रह अब केवल एक व्यक्ति (स्वयं गांधी जी) तक सीमित कर दिया गया।

जिस समय गाँधी जी ये पंक्तियां लिख रहे थे, दिल्ली में डा० अंसारी की अध्यक्षता में कुछ प्रमुख कांग्रेसजनों की एक सभा हुई

स्वराज्य दल को नया जीवन

और उसने स्वराज्य पार्टी को फिर से शुरू करने का निश्चय किया। डा० अंसारी की अध्यक्षता में स्वराज्य पार्टी एसेम्बलियों का चुनाव लड़ने के लिए कांग्रेस का एक अंग बन गई।

बिहार का कार्य समाप्त करने पर गाँधी जी फिर हरिजनोद्धार में लग गये। अनेक धर्मान्ध सनातनियों को गांधी जी का हरिजनोद्धार

बम फेंका गया

कार्य फूटी आँखों नहीं सुहा रहा था। २५ जून को पूना में जब गांधी जी को पूना म्युनिसपल्टी की ओर से एक मानपत्र देने का समारोह हो रहा था, किसी अज्ञात व्यक्ति ने गांधी जी की हत्या करने की कोशिश की। उसने उनकी मोटर पर बम फेंका। सौभाग्य से उसे गाँधी जी की मोटर पहचानने में भूल हो गई और गाँधी जी कुछ देर बाद पहुँचे। बम से ७ व्यक्ति घायल हुए।

यदि सनातनी लोगों के हृदय में हिंसा उमड़ रही थी तो कुछ

प्रायश्चित्त

उत्साही सुधारकों के हृदय में भी सनातनियों के प्रति गुस्सा भर रहा था। जुलाई में ऐसे ही एक सुधारक ने हरिजनोद्धार के एक विरोधी सनातनी पंडित लालनाथ के

सिर पर लाठी मार दी। गांधी जी ने सार्वजनिक कार्य में विरोधियों के प्रति असहिष्णुता दिखाने के प्रायश्चित्त में ७ दिन का उपवास किया।

गांधी जी ने कुछ समय के लिए रेलवे से यात्रा भी त्याग दी और उन्होंने उड़ीसा की पैदल यात्रा की।

बम्बई कांग्रेस के अवसर पर देश में अफवाहें फैलने लगीं कि गांधी जी कांग्रेस से बिलकुल अलग हो जायेंगे और १७ सितम्बर को उन्होंने एक वक्तव्य देते हुए इन अफवाहों की पुष्टि की। कांग्रेस से अलग होने के कारण समझाते हुए उन्होंने वक्तव्य में कहा—"शिक्षित कांग्रेसजनों का एक बहुत बड़ा वर्ग मेरे उपायों और विचारों और उन पर आधारित मेरे प्रोग्राम से ऊब गया था।......मैं कांग्रेस के विकास में सहायक होने के बजाय बाधक हो रहा था...वह एक प्रखर लोकतन्त्रवादी तथा प्रातिनिधिक संस्था बनी रहने के बजाय, मेरे व्यक्तित्व से दब रही थी...एक जन्मजात लोकतंत्रवादी के लिए यह बात बड़ी अपमानजनक थी। मैं गरीब से गरीब व्यक्ति के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने का दावा करता हूँ और उनकी अवस्था में रहने की आकांक्षा रखता हूँ और यथाशक्ति उनके तल तक पहुँचने का प्रयत्न करता हूँ।......१४ साल के प्रयोग के बाद अधिकांश कांग्रेसजनों के लिए अहिंसा केवल एक नीति बनी है, परन्तु मेरे लिए धर्म है।......मैंने इस प्रयोग के लिए अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया है और मुझे पूर्ण तटस्थता तथा कार्य की पूरी स्वाधीनता की आवश्यकता है।"

कांग्रेस से अलग

कांग्रेस से अलग होने के बाद गांधी जी पूरी तौर से हरिजनोद्धार तथा ग्रामोद्योग-विकास में लग गये। घोर परिश्रम के फलस्वरूप दिसम्बर में उनका स्वास्थ्य टूट गया और जनवरी में स्वास्थ्य लाभ के लिए बम्बई ले जाये गये। लगभग १० सप्ताह में उनका स्वास्थ्य सुधरा। जून में वह वर्धा के

सेगांव में बसे

निकट सेगांव में बस कर एक ग्रामवासी बन गये और 'सेगांव के संत' के नाम से विख्यात हुए। सेगांव का नाम, बाद में, बदल कर सेवाग्राम कर दिया गया गया।

१९३६ के अन्त में गाँधी जी सुझाव पर कांग्रेस का अधिवेशन पहली बार एक गांव में हुआ। गाँधी जी स्वयं फैजपुर अधिवेशन में गये और वहां से अस्पृश्यता-निवारण के लिए त्रावणकोर रवाना हो गये। इससे एक महीना पूर्व, नवम्बर में, महाराज त्रावणकोर राज्य के मंदिर हरिजनों के लिए खोल देने की घोषणा कर चुके थे। गाँधी जी हरिजनों के साथ अनेक प्रसिद्ध तथा प्राचीन मंदिरों में गये और लोगों को हिन्दू धर्म का तत्व समझाया कि ईश्वर की दृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं, कोई ऊँच-नीच नहीं है।

फरवरी में प्रान्तीय एसेम्बलियों के चुनाव में कांग्रेस ने भारी विजय प्राप्त की और ११ प्रांतों में से ८ में उसने भारी बहुमत प्राप्त कर लिया।

कांग्रेस मंत्रि-मंडलों के सलाहकार

मार्च में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई जिसमें प्रस्ताव पास करके पदग्रहण की अनुमति दे दी गई, पर यह आदेश दिया गया कि जब तक गवर्नर लोग यह आश्वासन न दे दें कि वे अपने हस्तक्षेप के विशेषाधिकार का उपयोग न करेंगे तब तक कांग्रेस मंत्रिमंडल न बनायेगी। यह प्रस्ताव गांधी जी ने बनाया था। अंत में जुलाई में ७ प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडल बन गये। बाद में दो और प्रान्त कांग्रेस के नियंत्रण में आ गये। इस प्रकार ११ में से ९ प्रान्तों में उसने शासन की बागडोर सम्हाल ली। गांधी जी कांग्रेस मंत्रिमंडलों के गैर-सरकारी सलाहकार बन गये। उनके सुझाव पर कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने मद्यनिषेध, किसानों को सुविधाएँ देना, बुनियादी शिक्षा, जेलों को सुधारगृह बनाने के कार्यक्रम हाथ में ले लिये।

अक्टूबर में गांधी जी कलकत्ता गये और वहाँ सरकार से लम्बी वार्ता चलाने के बाद बंगाल के लगभग ११०० क्रांतिकारी बंदियों को

छुड़ाने में सफल हुए। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ बीमार थे, फिर भी कलकत्ता आकर उनसे मिले।

गांधी जी कलकत्ता से जब वापस लौटे तो उनका स्वास्थ्य बहुत विगड़ गया था और डाक्टरों ने उन्हें जुहू (बम्बई) में जाकर स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए विवश किया।

जनवरी १९३८ में लार्ड लोथियन सेगांव आये और गांधी जी के साथ ठहरे। फरवरी में कांग्रेस का हरिपुरा अधिवेशन हुआ जिसमें गांधी जी सम्मिलित हुए। वहां से वह फिर कलकत्ता चले गये, जहां शेष क्रांतिकारी बन्दियों को छुड़ाने का काम हाथ में लिया। गांधी जी का स्वास्थ्य अभी पूरी तौर से नहीं सुधरा था और उन्होंने पहली बार अनुभव किया कि बुढ़ापा उन्हें घेर रहा है। कलकत्ता से वह उड़ीसा गये और डेलांग में गांधी सेवा संघ के वार्षिक अधिवेशन का सभापतित्व किया।

लार्ड लोथियन से भेंट

मई के दूसरे सप्ताह में गांधीजी ने बादशाह खां के साथ सीमाप्रांत का दौरा किया। पठानों ने उन्मुक्त हृदय से उनका स्वागत किया। गांधी जी ने उन्हें अहिंसा का सन्देश दिया।

सीमाप्रांत का दौरा

अक्टूबर में चेक लोगों के आत्मसमर्पण पर गांधीजी ने उन्हें अहिंसा का आश्रय लेने का उपदेश दिया। यही उपदेश उन्होंने युरोप के पददलित यहूदियों को भी दिया। 'युरोप के अछूत' सम्बोधित कर उनसे अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट की। जनवरी १९३८ में जापान के प्रसिद्ध समाज-सुधारक डा० कगावा सेगांव में गांधी जी से मिले। दोनों में सहकारिता आन्दोलन पर बातें हुईं।

उस समय रियासतों में स्वाधीनता-संग्राम एक नई अवस्था से गुजर रहा था। अनेक रियासतों में राज्य और जनता के बीच संघर्ष छिड़ा था। और रियासतें जोरों से दमन कर रही थीं। राजकोट में

सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में जनता ने सफलतापूर्वक सत्याग्रह-संग्राम चलाया और अन्त में राजकोट के ठाकुर साहब को जनता के प्रतिनिधियों से समझौता करना पड़ा। बाद में अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट के भड़काने से ठाकुर साहब ने समझौता भंग कर दिया। गांधी जी इससे बड़े विचलित हुए और उन्होंने ६ मार्च को आमरण अनशन शुरू कर दिया। परन्तु अनशन शुरू होने के दूसरे ही दिन वाइसराय ने इस मामले में हस्तक्षेप किया और उन्होंने भारत के चीफ जस्टिस सर मारिस ग्वायर से मामले का फैसला कराने का सुझाव रखा। गाँधी जी ने ७ मार्च को अनशन तोड़ दिया।

राजकोट-प्रकरण

इसी समय त्रिपुरी में काँग्रेस का तूफानी अधिवेशन हो रहा था। गांधी जी की इच्छा के विरुद्ध श्री सुभाष बोस दूसरी बार काँग्रेस अध्यक्ष चुने गये थे। उनके विरुद्ध डा० पट्टाभि-सीतारमैया भारी वोटों से हार गये थे। गाँधी जी ने इस हार को सार्वजनिक रूप से अपनी हार मानी। त्रिपुरी में गाँधी जी के नेतृत्व में फिर विश्वास प्रकट किया गया। और श्री सुभाष बोस को वर्किंग कमेटी के सदस्य उनकी सलाह से नामज़द करने का आदेश दिया गया।

त्रिपुरी

सर मारिस ग्वायर ने अपना फैसला सरदार वल्लभभाई पटेल के पक्ष में दिया। यह जन-पक्ष की भारी विजय थी। परन्तु काफी हृदय-मंथन के बाद गाँधी जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह उनकी अहिंसा की विजय नहीं थी। उनके आमरण अनशन में हिंसा का पुट था। फलतः उन्होंने चीफ जस्टिस के फैसले से लाभ उठाने से इन्कार कर दिया। इससे मालूम पड़ता है कि गाँधी जी अहिंसा के आचरण में कितनी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं। कोई भी राजनीतिक नेता भारी मूल्य चुका कर प्राप्त की गई विजय को इस प्रकार ठुकरा देने का साहस नहीं करता।

सूक्ष्म दृष्टि

मई में कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, जिसमें श्री सुभाष घोस ने इस्तीफा दे दिया। गांधी जी ने एक वक्तव्य निकाल कर सार्वजनिक रूप से अपने राजकोट के आचरण के लिए वाइसराय, ठाकुर साहब और अन्य लोगों से क्षमा मांगी।

क्षमा-प्रार्थना

३ सितम्बर को द्वितीय महायुद्ध की घोषणा होने के बाद ही वाइसराय ने महात्मा गांधी को मिलने के लिए शिमला बुलाया। गांधी जी ने इंग्लैंड के पक्ष में अपनी सहानुभूति प्रकट की, परन्तु यह स्पष्ट कर दिया कि यदि कोई समझौता होना चाहिए तो कांग्रेस और सरकार के बीच होना चाहिए।

द्वितीय महायुद्ध का श्रीगणेश

लगभग ५० से अधिक भारतीय नेताओं से मिलने के बाद वाइसराय ने १७ अक्टूबर को एक वक्तव्य दिया, जिसका अर्थ था कि ब्रिटिश सरकार युद्ध का अंत होने के बाद ही कोई सलाह-मशविरा करने के लिए तैयार होगी। गाँधी जी ने इस पर कहा 'वाइसराय की घोषणा बड़ी निराशाजनक है...कांग्रेस को फिर बाहर आना पड़ेगा और इसके बाद ही वह शक्तिशाली तथा अपने लक्ष्य तक पहुँच सकने में समर्थ बन सकेगी। कांग्रेस ने रोटी माँगी और उसे पत्थर मिला।'

नवम्बर में ब्रिटिश सरकार की नीति के विरोध में सभी प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने लगभग दो साल के शासन के बाद इस्तीफे दे दिये और प्रांतों में गवर्नरी राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार कांग्रेस ने सारे संसार के सामने सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश सरकार यद्यपि लोकतंत्रवाद की हामी बन रही है, परन्तु अपने ही साम्राज्य में वह लोकतंत्रवाद को कुचल रही है।

कांग्रेस मंत्रिमंडलों के इस्तीफे

१९४० के शुरू में दीनबन्धु एंड्रूज का देहांत हो गया जिससे गांधी जी को बड़ा शोक हुआ। ५ फरवरी को गांधी जी वाइसराय से

मिले और मुलाकात के बाद कहा—'मुझे शांतिप्रद तथा सम्मानपूर्ण समझौता होने की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती।'

एंड्रूज का देहांत

मार्च में मौलाना आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और कांग्रेस का अधिवेशन रामगढ़ में हुआ। गांधी जी ने विषय समिति में भाषण देते हुए कहा 'प्रत्येक कांग्रेस कमेटी, को सत्याग्रह कमेटी बन जाना चाहिए।' परन्तु इसके साथ ही उन्होंने चेतावनी दी कि यदि उनके सेनापतित्व में संग्राम चलाना है तो उनकी सारी शर्तें पूरी करनी होंगी तभी वे सेना का नायकत्व करेंगे।

रामगढ़ कांग्रेस से अपील

जून में फ्रांस का पतन हो गया और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बड़ी विषम हो गई। इंग्लैंड के इतिहास में पहली बार उस पर जर्मन आक्रमण की आशंका की जाने लगी। गांधी जी ने 'प्रत्येक अंग्रेज से' नामक प्रसिद्ध अपील निकाल कर अंग्रेजों से अहिंसक मार्ग ग्रहण करने का अनुरोध किया। कांग्रेस वर्किंग कमेटी बड़े धर्म-संकट में पड़ी। उसने अनुभव किया कि इस संकटकालीन अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में वह गांधी जी की अहिंसा की नीति के साथ पूरा योग नहीं दे सकती। अतः उसने गांधी जी को कांग्रेस के प्रोग्राम तथा कार्य की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया तथा अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाने पर ब्रिटेन ने युद्ध में सहयोग का प्रस्ताव किया।

प्रत्येक अंग्रेज से अपील

अगस्त में वाइसराय ने अपना प्रसिद्ध वक्तव्य दिया जो 'अगस्त प्रस्ताव' के नाम से प्रसिद्ध है। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और घोषित किया कि 'ब्रिटिश सरकार का इरादा तलवार के बल पर भारत को अपने अधिकार में रखने का मालूम पड़ता है।' वर्किंग कमेटी ने अगस्त प्रस्ताव से निराश होकर पुनः गांधी जी से कांग्रेस का नेतृत्व करने की प्रार्थना की।

वर्किंग कमेटी के अनुमोदन से गाँधी जी ने अक्टूबर में वैयक्तिक सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया। उन्होंने आचार्य विनोवा भावे को प्रथम सत्याग्रही चुना। आचार्य विनोवा भावे ने वर्धा से ७ मील पर एक ग्रामीणों की सभा में युद्ध-विरोधी भाषण देकर सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। वह २१ अक्टूबर को गिरफ्तार किये गये और उन्हें तीन महीने की सजा मिली।

वैयक्तिक सत्याग्रह का नेतृत्व

वैयक्तिक सत्याग्रह लगभग एक साल, दिसम्बर १९४१ तक, चला। लगभग ६०,००० व्यक्तियों ने उसमें भाग लिया। इनमें ४०० से अधिक प्रांतीय तथा केन्द्रीय धारा-सभाओं के सदस्य थे। वर्किंग कमेटी के लगभग सभी सदस्यों ने संग्राम में भाग लिया। पंडित जवाहरलाल नेहरू को गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट ने ४ साल की सजा दी। गाँधी जी को गिरफ्तार करने का साहस सरकार को नहीं हुआ। अन्त में दिसम्बर १९४१ में समझौते का भाव प्रदर्शित करते हुए सरकार ने सभी सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया। कांग्रेस ने भी पुनः सत्याग्रह-संग्राम नहीं चलाया।

७ दिसम्बर को जापानियों ने पर्ल बंदरगाह पर हमला किया और युद्ध भारत के द्वार पर आ पहुँचा। एक बार फिर अहिंसा के प्रश्न पर कांग्रेस और गाँधी जी के मार्ग अलग-अलग हो गये और गाँधी जी को कांग्रेस के नेतृत्व की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया गया। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने पुनः राष्ट्रीय आधार पर देश की रक्षा में योग देने की इच्छा प्रकट की।

जापान युद्ध में

१८ फरवरी १९४२ को कलकत्ता में मार्शल और मैडम च्यांग-काई-शेक से गांधी जी की ऐतिहासिक भेंट हुई। दोनों में ४॥ घंटे तक बातें हुईं। मैडम च्यांग-काई-शेक ने, जो खादी की साड़ी पहने थीं तथा माथे पर कुंकुम लगाये थीं, दुभाषिये का कार्य किया।

च्यांग-काई-शेक से भेंट

मार्च में सर स्ट्रैफ़ोर्ड क्रिप्स समझौते का प्रस्ताव लेकर आये। गांधी जी ने प्रस्तावों को देखते ही उन्हें 'बाद की तारीख पड़ी हुई चेक' कह कर ठुकरा दिया, और उन्होंने दिल्ली वार्ताओं में कोई भाग नहीं लिया। क्रिप्स ने घोषित किया कि यदि सभी भारतीय पार्टियां सहमत हो जायँ तो भी भारत की रक्षा का भार भारतीयों के हाथ में नहीं सौंपा जा सकता। सभी भारतीय पार्टियों ने क्रिप्स प्रस्ताव ठुकरा दिये और क्रिप्स साहब खाली हाथ इंग्लैंड लौट गये।

क्रिप्स प्रस्ताव

क्रिप्स वार्ताओं की विफलता से देश का वातावरण बड़ा क्षुब्ध हो उठा। जापानी फौजें भी अब बर्मा विजय कर भारत की सीमा पर आ धमकी थीं और भारत पर उनके आक्रमण की आशंका की जा रही थी। भारत की भूमि पर जापानियों के हवाई आक्रमण भी हो गये थे। मलाया, सिंगापुर बर्मा तथा रंगून से जिस प्रकार ब्रिटिश फौजें भागी थीं, उसे देखते हुए इस बात की थोड़ी सम्भावना मालूम पड़ती थी कि भारत पर जापानी आक्रमण होने पर अंग्रेज देश की रक्षा कर सकेंगे। ऐसी विषम परिस्थिति में गांधी जी ने अंग्रेजों के सामने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव किया। शीघ्र ही देश के एक छोर से दूसरे छोर तक यह मांग दुहराई जाने लगी और वर्किंग कमेटी ने भी जुलाई में यह प्रस्ताव पास किया।

भारत छोड़ो

५ अगस्त को वर्किंग कमेटी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में पेश करने के लिए एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव में घोषित किया गया था कि स्वतंत्र भारत संयुक्त राष्ट्रों का मित्र बनेगा। प्रस्ताव में देशवासियों से खतरों तथा कठिनाइयों का सामना साहस तथा धैर्य से करने की अपील की गई थी तथा राष्ट्र से गांधी जी के नेतृत्व में संगठित होने तथा भारतीय स्वाधीनता के अनुशासित सिपाही के रूप में उनके आदेशों का पालन करने के लिए कहा

गया था।

८ अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ, जिसमें 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ। गाँधी जी ने राष्ट्र को 'करो या मरो' का संदेश दिया। उन्होंने घोषित किया कि वह कोई भी संग्राम चलाने से पहले वाइसराय से मिलकर समझौते का मार्ग निकालने की कोशिश करेंगे और उन्हें पूरी उम्मीद है कि समझौते का कोई मार्ग निकल आयेगा।

९ अगस्त

परन्तु, सरकार ने गाँधी जी को अपने समझौते के शांतिपूर्ण प्रयत्न जारी रखने का कोई अवसर न दिया। दूसरे दिन, ९ अगस्त को, तड़के गाँधी जी, कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य तथा सभी कांग्रेस कार्यकर्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। कांग्रेस कमेटियां गैर-कानूनी संस्थाएँ घोषित कर दी गईं और कांग्रेस का जड़-मूल से नाश करने का प्रयत्न किया गया। राष्ट्र ने भी यह खुली चुनौती यों ही नहीं जाने दी और उसने भी अपनी शक्ति भर सरकार का प्रतिरोध किया। सारे देश में अभूतपूर्व दमन हुआ। निहत्थे नागरिकों पर आकाश से गोले बरसाये गये। ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने सभ्यता का सारा जामा फेंक कर अपना नग्न बर्बर रूप प्रकट किया।

गांधी जी आगा खां महल में नजरबंद किये गये। उन्होंने १४ अगस्त को वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें इस प्रकार की उग्र कार्रवाई करने से पूर्व समझौते का प्रयत्न न करने के लिए उनकी तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने इस आक्षेप पर आपत्ति की कि कांग्रेस हिंसक क्रांति के लिए भी तैयार थी। उन्होंने सरकार की नीति पर पुनर्विचार की प्रार्थना की, परन्तु वाइसराय ने उनकी अपील पर कोई ध्यान न दिया।

आगा खां महल में

महादेव भाई का विछोह

१५ अगस्त को गांधी जी के दाहिने हाथ, श्री महादेव देसाई का आगा खां महल जेल में

देहांत हो गया ।

सितम्बर में एसेम्बली में बहस के समय गृह-सदस्य ने महात्मा गाँधी तथा कांग्रेस पर अनेक असभ्य तथा निम्न कोटि के आक्षेप किये ।

गाँधी जी ने पुनः पत्र लिख कर इन असत्य अभियोगों को चुनौती दी । अंत में दिसम्बर में गाँधी जी ने वाइसराय को स्पष्ट संकेत कर दिया कि अब उनके सामने उपवास करने का ही एकमात्र मार्ग रह गया है । वाइसराय फिर भी अविचलित रहे ।

३ सप्ताह का उपवास

गाँधी जी ने १० फरवरी से ३ सप्ताह का उपवास करने का निश्चय किया । सारे देश में उनके उपवास के समाचार से हलचल मच गई । वाइसराय से उनका पत्र-व्यवहार प्रकाशित होने पर उनकी रिहाई की एक स्वर से माँग की जाने लगी । विदेशी पत्रों ने भी सरकार के रुख की कड़ी निंदा की । वाइसराय की कौंसिल के ६ सदस्यों ने सरकार की नीति के विरोध में इस्तीफा दे दिया ।

जीवन संकट

उपवास के लगभग एक सप्ताह के बाद गाँधी जी की अवस्था चिंता पैदा करने लगी । सारे देश में उनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना की जाने लगी । उनकी हालत तेजी से गिरती गई । अन्त में २१ फरवरी को संकट काल उपस्थित हो गया । सरकार को गाँधी जी के जीवित रहने की आशा जाती रही और उसने पुलिस तथा फौज का पूरा बंदोबस्त कर लिया । 'पर जाको राखनहार साइयां ताको मार सके ना कोय ।' सरकार की आशाएँ पूरी नहीं हुई और गाँधी जी तीन सप्ताह के उपवास की अग्नि-परीक्षा में सफल उतरे । डाक्टरों को भी इस अद्भुत ईश्वरीय लीला पर आश्चर्य हुआ । गाँधी जी ने शरीर पर आत्मा की विजय सिद्ध करके दिखा दी । सारे देश ने संतोष की साँस लिया । [illegible] के सामने गाँधी जी ने ब्रिटिश सरकार को अभियुक्त

के कठघरे में खड़ा कर दिया।

२२ फरवरी १६४४ को गाँधी जी की जीवन-सहचरी माता कस्तूर वा का आगा खाँ महल जेल में देहांत हो गया। यह उन पर

कस्तूर वा का देहांत

दूसरा वज्राघात था। पहले महादेव देसाई बिछुड़े; अब वा भी चल बसीं। गांधी जी जैसे स्थितप्रज्ञ महापुरुष भी इस वियोग से विचलित हो उठे।

६ अप्रैल को सरकार ने सूचना दी कि गाँधी जी तीन दिन से मलेरिया ज्वर से पीड़ित हैं जिससे फिर सारा देश उनके स्वास्थ्य के

रिहाई

लिए चिंतित हो उठा। मलेरिया धीरे-धीरे गाँधी जी पर हावी होने लगा और उनकी हालत बिगड़ने लगी। शरीर में रक्त की कमी से पीलापन छा गया। अन्त में ३ मई को सरकार को स्वीकार करना पड़ा कि गांधी जी का जीवन-संकट में है। सारे देश में फिर एक स्वर से उनकी रिहाई की माँग होने लगी। अन्त में सरकार ने ६ मई को उन्हें स्वास्थ्य के कारणों से बिला शर्त रिहा कर दिया। गाँधी जी आगा खां महल से पर्णकुटी में ले जाये गये, जहां डाक्टरों ने रात-दिन एक कर के उन्हें मृत्यु के मुँह से बचाया।

स्वास्थ्य-लाभ के लिए वह बम्बई में जुहू तट पर ले जाये गये। वहां उन्होंने पूर्ण विश्राम करने के उद्देश्य से १५ दिन का मौन

स्वास्थ्य-लाभ

धारण किया। यह मौन उन्होंने २६ मई को भंग किया। पर इसके बाद भी उन्होंने स्थायी रूप से २० घंटे मौन रहने का व्रत ले लिया।

जुहू में लगभग एक महीना विश्राम करने के बाद गाँधी जी पूना में डा० दीनशा मेहता के अस्पताल में चले गये। वहाँ से २ जुलाई को विश्राम के लिए पंचगनी रवाना हुए। पंचगनी में उन्होंने लंदन के 'न्यूज़ क्रानिकल' के संवाददाता को भेंट दी, जिसमें कांग्रेस और सरकार के बीच अड़ंगा भंग करने का पहला प्रयत्न किया गया था।

गाँधी जी ने वाइसराय को भी एक पत्र लिख कर कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों की रिहाई की माँग की और यह माँग स्वीकार न किये जाने पर उनसे भेंट करने की अनुमति चाही। वाइसराय ने गाँधी जी से अड़ंगा हल करने के लिए सुनिश्चित प्रस्ताव माँगे। गाँधी जी ने निम्न प्रस्ताव रखे—"मैं कांग्रेस वर्किंग कमेटी को यह सलाह देने के लिए तैयार हूँ कि परिवर्तित परिस्थिति में अगस्त १६४२ के प्रस्ताव के अनुसार सामूहिक सत्याग्रह नहीं चलाया जा सकता और यदि भारत की तत्काल स्वाधीनता की घोषणा कर दी जाय तथा जिम्मेदार राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाय तो कांग्रेस युद्ध में सहयोग देने के लिए तैयार है।" वाइसराय ने इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया।

वाइसराय से पत्र-व्यवहार

फिर भी गाँधी जी हताश नहीं हुए। उन्होंने राष्ट्र की प्रगति में दूसरी बड़ी बाधा हिंदू—मुस्लिम समस्या को हल करने का प्रयत्न किया। उन्होंने राजा जी के कांग्रेस-लीग समझौते के हल को आशीर्वाद दिया जिसमें एक प्रकार से पाकिस्तान बनाने की माँग स्वीकार की गई थी। यद्यपि मि० जिन्ना को यह हल स्वीकार नहीं हुआ, फिर भी उन्होंने प्रकट किया कि वह साम्प्रदायिक समस्या पर समझौते के लिए बम्बई में गाँधी जी से मिलेंगे।

साम्प्रदायिक समस्या हल करने का प्रयत्न

गाँधी जी लगभग दो साल के बाद अगस्त में पहली बार सेवाग्राम वापस लौटे। वर्धा स्टेशन पर उनका भारी स्वागत किया गया। १८ अगस्त को गाँधी जी के मि० जिन्ना से मिलने के लिए बम्बई रवाना होने के पूर्व सरकार ने वाइसराय से उनका सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया। इस पत्र-व्यवहार से प्रकट हो गया कि हिंदू-मुस्लिम समस्या हल हो जाने पर भी सरकार गाँधी जी के प्रस्तावों को स्वीकार न करेगी। इस प्रकार गाँधी-जिन्ना वार्ता विफल बनाने की जमीन पहले से ही तैयार कर दी गई,

सेवाग्राम में

फिर भी गांधी जी निश्चित तिथि पर मि० जिन्ना से मिलने के लिए बम्बई रवाना हो गये।

गांधी-जिन्ना वार्ता लगभग दो सप्ताह चली, परन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। मि० जिन्ना ने मूल साम्प्रदायिक समस्या की चर्चा ही नहीं होने दी और गांधी जी के प्रतिनिधिक रूप, कांग्रेस और लीग की मर्यादा आदि ऊपरी बातों में ही सारा समय गँवा दिया। इन वार्ताओं से स्पष्ट हो गया कि मि० जिन्ना वास्तव में आपस में समझौता नहीं चाहते: उनकी राजनीति तो लंदन की नब्ज पर आधारित थी। उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार इस समय कांग्रेस से समझौता करने के लिए तैयार नहीं है, इसलिए उन्होंने भी कोई समझौता करने से इन्कार कर दिया।

जिन्ना से वार्ता

१९४४ के अन्त में गांधी जी ने दूसरा उपवास करने का विचार किया परन्तु वह रह गया। यद्यपि इस उपवास के कारण नहीं प्रकट किये गये, फिर भी यह ख्याल किया जाता था कि गांधी जी चारों ओर फैले अन्याय, शोषण तथा झूठ के प्रतिकार के लिए उपवास करना चाहते थे।

अनशन का विचार

अगले साल, २१ मार्च को वाइसराय परामर्श के लिए लंदन बुलाये गये और १४ जून को वापस लौटने पर उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों की रिहाई की घोषणा की। साथ ही उन्होंने शिमला सम्मेलन का भी प्रस्ताव रखा। गांधी जी कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में शिमला सम्मेलन में आमंत्रित किये गये, परन्तु उन्होंने यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। उन्होंने वाइसराय को उत्तर दिया—'आपके सम्मेलन में मेरे लिए कोई स्थान नहीं है। एक व्यक्ति की हैसियत से मैं केवल सलाह दे सकता हूँ।' अंत में वह वाइसराय के सलाहकार बनकर शिमला गये। शिमला सम्मेलन २५ जून से १४ जुलाई तक चला, पर अन्त में वह भंग हो गया। कांग्रेस ने अपनी ओर से सम्मानपूर्ण समझौता कर लेने की

शिमला सम्मेलन

पूरी कोशिश की, परन्तु लीग बाधक बनी।

शिमला सम्मेलन भंग होने के बाद घटनाचक्र बड़ी तेज़ी से घूमने लगा। इंग्लैंड में चर्चिल सरकार की हार और मजदूर सरकार की स्थापना हुई। वाइसराय लार्ड वेवल पुनः परामर्श के लिए लन्दन बुला लिये गये। २५ सितम्बर को—जर्मनी के आत्मसमर्पण करने के लगभग चार महीने बाद ही जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध का अन्त हो गया। इस महायुद्ध में यद्यपि ब्रिटेन अन्त में विजयी रहा, परन्तु वह युद्ध में इतना जर्जर हो गया कि उसकी गणना द्वितीय श्रेणी के राष्ट्रों में होने लगी। अब यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन तलवार के बल असंतुष्ट भारत को अपने अधिकार में नहीं रख सकता। दूसरे मजदूर सरकार भी भारत को स्वराज्य देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थी। अतः भारतीय गत्यवरोध दूर करने के लिए बड़ी तेजी से कार्रवाई हुई। कांग्रेस संस्थाएँ फिर वैध करार दे दी गईं। सभी प्रांतीय तथा केन्द्रीय धारासभा के नये सिरे से चुनाव हुए, जिनमें कांग्रेस ने अपूर्व विजय प्राप्त की। १९४६ के शुरू में ब्रिटिश मंत्रिदल भारत आया और उसने नेताओं से लगभग चार महीने की वार्ता के बाद 'भारत छोड़ने' की नीति स्वीकार कर ली। मंत्रिदल ने एक योजना रखी, जिसमें देश के विभाजन का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया था और एक निर्बल संघ सरकार का आयोजन किया गया था।

कैबिनेट मिशन

गाँधीजी ने इन महत्वपूर्ण घटनाक्रमों में पूरा हिस्सा लिया और राष्ट्र का उचित मार्ग पर पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने देश से ब्रिटिश सरकार की ईमानदारी में सन्देह न करने की अपील और मंत्रिदल योजना स्वीकार कर लेने की सलाह दी। कांग्रेस ने उनकी सलाह के अनुसार मंत्रिदल की योजना स्वीकार कर ली; लीग ने भी पहले तो मंत्रिदल योजना स्वीकार कर ली, परन्तु,

गाँधीजी की सलाह

बाद में कांग्रेस-द्वारा अस्थायी सरकार बना लिये जाने पर उसने मंत्रिदल की योजना अस्वीकार कर दी और 'सीधी कार्रवाई' का कार्यक्रम शुरू किया। लीग के इस कार्यक्रम के फलस्वरूप कलकत्ते में अपूर्व नरमेध हुआ और बाद में नोआखाली में भी मध्ययुगीन बर्बरताएँ दिखलाई गईं, जिससे सारा देश थर्रा उठा। वाइसराय लार्ड वेवल ने लीग का दमन करने के बजाय लीगी प्रतिनिधियों को अस्थायी सरकार में शामिल कर लिया और इस प्रकार सरकार में भी लीग-कांग्रेस संघर्ष शुरू हुआ।

स्वाधीनता-प्राप्ति के अवसर पर देश में गृहयुद्ध की ज्वाला भड़कते देख गांधी जी बड़े दुखी हुए और उन्होंने नोआखाली जाकर अपनी अहिंसा को कसने का निश्चय किया।

नोआखाली यात्रा गांधी जी नोआखाली जाने के लिए जब कलकत्ता में थे तभी बिहार के बहुसंख्यकों-द्वारा अल्पसंख्यकों से बदला लिये जाने का समाचार मिला। गांधी जी ने प्रकट किया कि बिहार के दंगे यदि तुरन्त शांत नहीं हो गये तो वे आमरण अनशन करेंगे। गांधी जी के इस निश्चय का बिहार पर अनुकूल प्रभाव पड़ा और वहां के दंगे एक सप्ताह के भीतर शांत हो गये।

गांधी जी २० नवम्बर सन् १९४६ को श्रीरामपुर पहुँचे और वहां डेढ़ मास तक रुके। इसके बाद उन्होंने नववर्ष के द्वितीय दिन अर्थात् २ जनवरी सन् १९४७ से गांव-गांव की पैदल यात्रा आरम्भ की। गांधी जी की इस यात्रा का अनुकूल प्रभाव पड़ा और मुसलमानों ने अपने कुकृत्यों पर पश्चात्ताप प्रकट किया तथा हिन्दुओं के साथ भाई-भाई की तरह रहने का आश्वासन दिया। इस प्रकार गांधी जी ने पुनः सारे संसार के सामने अपनी अहिंसा की अद्भुत शक्ति सिद्ध कर के दिखा दी।

अहिंसा की शक्ति

नोआखाली से गांधी जी बिहार आये और वहां भी गांव-गांव में घूम कर अल्पसंख्यकों को पुनः उनके गांव में बसाने में सहायता दी

तथा बहुसंख्यकों को उपदेश दिया कि उन्हें अपने पड़ोसी धर्म का पालन करना चाहिए।

इस प्रकार जहां गाँधी जी एक ओर राष्ट्र को शांति तथा एकता का उपदेश दे रहे थे, दूसरी ओर लीगी फूट और विग्रह का बीज बो कर अपने लक्ष्य पाकिस्तान की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे। कलकत्ता और नोआखाली से संतुष्ट न हो कर, उन्होंने पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत में भी अशांति शुरू कर दी और इन दोनों प्रांतों में भी वह आग लगाई, जो अभी तक नहीं बुझ सकी है।

पंजाब और सीमाप्रांत

अस्थायी सरकार के कटु अनुभवों तथा मुस्लिम बहुमत प्रांतों के बर्बर कांडों ने कांग्रेस को कष्ट के साथ यह महसूस कराया कि एक मात्र व्यावहारिक उपाय देश का विभाजन ही है। ब्रिटिश सरकार ने पहिले तो जून १९४८ तक भारत से हटने की घोषणा की, परन्तु देश के नेताओं द्वारा विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिये जाने पर वह १९४७ में ही १५ अगस्त तक हट जाने के लिए तैयार हो गई।

देश का विभाजन

१५ अगस्त को स्वाधीनता दिवस पर सारे देश में अपूर्व उत्सव मनाया गया और जिस तिरंगे झंडे के लिए कितने ही वीरों ने अपनी बलि दे दी, वह शान के साथ सभी सरकारी इमारतों पर फहराने लगा। परन्तु गांधी जी के लिए यह दिवस आनन्द-उत्सव मनाने का नहीं, बल्कि गंभीर आत्मचिंतन का था। यद्यपि देश परतंत्रता से मुक्त हो गया, फिर भी वह जिस स्वराज्य के लिए, रामराज्य के लिए उद्योग कर रहे थे, वह अभी कहां स्थापित हुआ? देश के दो टुकड़े हो गये। फलतः गाँधी जी ने उस स्वराज्य की स्थापना के लिए हिंदुस्तान और पाकिस्तान को जोड़ने के लिए पाकिस्तान में रहने के निश्चय की घोषणा की। गाँधी जी की इस घोषणा से सारा राष्ट्र रोमांचित हो उठा।

पाकिस्तान में रहने का निश्चय

गांधी जी नोआखाली जाने के उद्देश्य से ६ अगस्त को कलकत्ता पहुँचे। परन्तु कलकत्ता में मुसलमान नेताओं ने उन्हें आश्वासन दिया कि नोआखाली में कोई अप्रिय घटना नहीं घटने पायेगी और आप कलकत्ता में रह कर यहां शांति स्थापित करने का यत्न कीजिए। फलतः नोआखाली जाने का विचार स्थगित कर दिया और कलकत्ता में ही हिंदू क्षेत्र में एक मुस्लिम सज्जन के मकान में डेरा डाला। गांधी जी के कलकत्ता-निवास का अपूर्व प्रभाव पड़ा और जिस नगर में हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे थे, उसी नगर में वे एक दूसरे के गले मिलने लगे। यह एक जादूगर का करिश्मा था। पर लगभग एक पक्ष के बाद ही एक बार पुनः साम्प्रदायिक वैमनस्य की आग भड़क उठी। यहाँ तक कि उपद्रवियों की भीड़ ने उनके निवासस्थान पर हमला कर दिया और उनपर ईंट-पत्थर फेंके गये। गांधी जी लोगों के पागलपन से मर्माहत हुए और पुनः शान्ति स्थापित होने तक उपवास की घोषणा की। इसका असर हुआ और उन्होंने तीन दिन बाद उपवास तोड़ दिया। अब वह दिल्ली में शान्ति-स्थापनार्थ प्रयत्नशील हैं।

कलकत्ते में जादू

परन्तु अभी गांधी जी की अहिंसा को इस प्रकार का करिश्मा सारे देश में कर दिखाना है। तभी यह देश सच्चे स्वराज्य की स्थापना के योग्य बन सकेगा। ईश्वर करे, गांधी जी अपने लक्ष्य में सफल हों और अभी अनेक वर्षों हमारे बीच रह कर भारत को और उसके द्वारा संसार को अपनी अहिंसा का प्रकाश प्रदान करते रहें।

"You can not say, this is he, or that is he. All you can say with certainty is that he is here, he is here. Everywhere his influence reigns, his authority rules, his elusive personlity, pervades. This must be so, for it is true of all great men that they are incalculable beyond definition."*

—H. Polak.

—तीन—

जीवन का रहस्य

संसार की एक शक्ति

गाँधी आज संसार की एक शक्ति है। शत्रु-मित्र, शासक और शासित सब इसे मानते हैं। कोई उस की तुलना बुद्ध और ईसा से करता है, और कोई उसे असंभव क्रान्तिकारी मानता है पर सब उसकी असाधारणता के कायल हैं। उसने भारत में एक जीवन फूंक दिया है और प्रत्येक क्षेत्र में चर्चा, अनुमान और कल्पना का विषय बन गया है। घोर जंगली भील से लेकर, जिसने उसे देखा नहीं, सुना नहीं, संसार के महापंडित एवं तत्ववेत्ता तक उसे अपने-अपने ढंग से देखते हैं और सब उसकी महानता स्वीकार करते हैं—उससे मतभेद भले ही रक्खें।

---

*"तुम नहीं कह सकते कि गांधी यह चीज है, वह चीज है। विश्वास के साथ तो तुम इतना ही कह सकते हो कि वह यहां है, वह वहां है। हर जगह उसका प्रभाव शासन करता, उसका अधिकार राज करता है; उसका व्यक्तित्व हर जगह फैल गया है। और ऐसा तो होना ही चाहिए क्योंकि यह बात सभी महापुरुषों के लिए सत्य है कि वह वे परिभाषा के परे और अगण्य हैं।"

—हेनरी पोलक

तब फिर वह क्या चीज है जिसने उसे ऐसे अजेय, ऐसे शक्तिमान रूप में हमारे सामने ला खड़ा किया है? यह एक प्रश्न है और गूढ़ प्रश्न है।

किसी महापुरुष की अन्तःप्रेरणा का ऊहापोह करना खेल नहीं। वह बंधन में बँध नहीं सकता; वह संकुचित नहीं है, महान् है और जगत् की साधारण नाप से नापा नहीं जा सकता फिर गाँधी तो अनेक टेढ़ी-मेढ़ी लाइनों से बना है और साधारण आदमी तो सब ओर से पूरा का पूरा देख भी नहीं सकता।

फिर भी जब हम दुनियाँ की गति से, उसके ढंग से गाँधी का मिलान करते हैं तो वह अपने आप चमक उठता है—अन्धकार में चन्द्रमा की भाँति। इस द्वेष और कलुष से भरे संसार में, जहाँ भाई भाई का गला काटने की तैयारी में लगा है, जहाँ संसार के महान कहे जाने वाले राष्ट्र मुँह से शान्ति की मीठी-मीठी बातें करते हुए भी मौका पाते ही दूसरे को खा जाने की ताक में हैं, वहाँ—उस दुर्वह अन्धकार में गाँधी अपने आप चमकता है। वह दिखता है क्योंकि वह साधारण के बीच खड़ा हुआ असाधारण है।

वह आप चमकता है

× × ×

पाश्चात्य सभ्यता ने जीवन को उन्माद से भर दिया है। लोग एक नशे में जलधारा के तिनके की भांति बहे चले जा रहे हैं। अपनी शक्ति से नहीं, एक प्रबल धारा के वेग से। मनुष्य मशीन गया है। उसने अपना आत्म-विश्वास, अपना स्वत्व खो दिया है। और असहाय-सा, अपनी इच्छा के विरुद्ध, न जाने कहाँ जा रहा है। पाश्चात्य सभ्यता ने सब से बड़ा अकल्याण—जिसे पाप कहने में भी अत्युक्ति न होगी—जो किया है वह यह है कि उसने मनुष्य को अचेत कर दिया है और उसकी असीम दैवी संभावनाओं ('पासिबिलिटीज़')

पाश्चात्य सभ्यता का विष

को हर लिया है। आज किसी से ब्रह्मचर्य की बातें करो, वह अविश्वास की हँसी हँस देगा—यह हम जैसे साधारण मनुष्यों का काम नहीं। जीवन-हीन, मूर्च्छना से भरे ये शब्द क्यों? मनुष्य, जो जगत् का श्रेष्ठ उपादान है, जो भगवान् की श्रेष्ठ विभूति है, उसके मुख से ऐसे दीनता, दुर्बलता और असहायता के शब्द क्यों?

बात यह है कि जीवन की बाह्य गुलकारियों में हम भूल गये; आधुनिक सभ्यता के विष ने, हमारे अन्दर जो दिव्य ईश्वरीय विरासत थी उसे गदा मार कर चूर-चूर कर दिया। उसने हमें रेलगाड़ियाँ दीं, हवाई जहाज दिये; उसने घर में बैठे हुए पृथ्वी के उस छोर तक हमारी आवाज मिनटों—क्या सेकेण्डों—में पहुँचाई। उसने सुबह कलकत्ता में और शाम को हमें बगदाद में ले जाकर बैठाया। यह मायाविनी बिजली में चमकती है; वायुयानों पर हवा खाती है; मोटरों में दौड़ती, तोपों में दहाड़ती और अट्टहास करती है। उसकी मुस्कराहट पर हम भूल बैठे; उसके आलिंगन ने हमारा विवेक हर लिया। हम उसकी सुविधाओं का गान गाते हैं पर हम भूल गये कि जो कुछ हमारा परमतत्व था, हम में जो जीवित मनुष्य था, वह निष्प्राण हो गया। उसने हमें विश्व के संग्रहालय में—संसार की प्रदर्शनी में—मोहक रूप में सजाये मुर्दे की भाँति रख छोड़ा है। सुविधाएँ बढ़ीं, पर सुख न बढ़ा; जीवन न बढ़ा। हमारे दुःख बढ़ गये हैं; सारी मानसिक, नैतिक एवं शारीरिक शक्तियाँ बरफ की भाँति गल गई हैं। मानवता दुःख, दम्भ, ईर्ष्या, द्वेष के अंधकार में भटक रही है। करोड़ों गरीबों की हड्डियों पर बड़े-बड़े साम्राज्य खड़े किये गये हैं और उन्होंने अपनी जगमगाहट और चकाचौंध से हमारी दिव्य दृष्टि को धुंधला कर दिया है।

ऐसी दुनिया में, आत्म-विश्वास खोकर बेसुध, दैन्य से भरे हुए ऐसे जनसमूह में हम एक मनुष्य को देखते हैं जो असीम आत्म-विश्वास के स्तम्भ की भाँति शान्ति से खड़ा होकर हमें अंगुली से

मार्ग दिखा रहा है। वह हमें आकर्षित करता है—गरीब उसकी

इस दैन्य के बीच

ओर त्राता की तरह देखते हैं; धनी और अधिकारी उसकी हिम्मत पर आश्चर्य करते हैं। यह कैसा आदमी है !—पर यही गाँधी है। आत्म-विश्वास की मूर्त्ति; मानवता के दुःख से दुखी और उसे अन्धकार से प्रकाश में लाने को उद्यत !

जीवन की साधना

पहली बात जो गाँधी के जीवन में प्रकाश-रेखा के समान चमकती है और जो उसके जीवन में आदि से अन्त तक व्याप्त है, उसकी दिव्य साधना है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उसका जीवन साधना-मय है। वह उठता है, गिरता है, फिर उठता है और आगे बढ़ता जाता है। और साधना किसकी? सत्य की। अहिंसा उसकी नीति है; अंतःकरण उसकी कसौटी है; अपना निजी जीवन और भारत का सार्वजनिक जीवन उसकी प्रयोगशाला है। इस दृष्टि से वह राजनीतिक नेता नहीं, साधक है जो सत्य की शोध में चला जा रहा है। राजनीतिक प्रयोग इस साधना का एक अंग है। गाँधी भारत के राजनीतिक क्षेत्र में इसलिए नहीं आया कि उसे स्वराज्य लेना था—स्वराज्य राजनीतिक अर्थ में, बल्कि इसलिए कि उसने जिन सिद्धान्तों को, जिस साधना को अपने जीवन में अपनाया है उसे विशाल-जनसमूह के जीवन में भी वह लाना चाहता है और वह इसलिए कि हम ने, जीवन नीति-प्रधान होना चाहिए, इसे भुला दिया है। वह प्रत्येक ऐसे बंधन का विरोधी है जो आत्मा को मूर्च्छित करता है, जो अन्तःकरण की आवाज को दबा देता है। वह पाश्चात्य सभ्यता का विरोधी है क्योंकि वह जीवन में कृत्रिमता लाती है, मनुष्य में स्वार्थ को प्रबल करती है—फलतः मानव-समाज में शारीरिक—भौतिक—सुखों के लिए होड़ उत्पन्न करती है और दूसरी ओर अन्तःकरण को शून्य, शक्तिहीन और मृतप्राय कर देती है। उसके पास तो एक कसौटी है। जो सिद्धान्त, जो शासन-प्रणाली, जो समाज-व्यवस्था, किसी नैतिक आधार

पर स्थित है, जिससे आत्मिक शक्ति बढ़ती है, अन्तःकरण को बल मिलता है, उसका यह समर्थन करेगा और जो आत्मा को कुंठित करेगी, मनुष्य को शरीर—सुख का, वासनाओं का गुलाम बनायेगी, उसका विरोध करेगा।

इससे पहली और सब से जरूरी बात तो यह निकलती है कि वह एक साधक है:—समाजसुधारक, राजनीतिज्ञ आदि तो उस (साधक) के टुकड़े हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उसका जीवन साधना का एक अविच्छिन्न प्रयत्न है। उसके जीवन को देखिए—वह असीम संघर्षों का, सतत प्रयत्नशीलता का जीवन है। उसमें एक निरन्तर युद्ध है, निरन्तर तैयारी है। वहाँ कभी अकर्मण्यता नहीं, निराशा नहीं। प्रतिक्षण उसके जीवन की साधना, वायु के अविच्छिन्न प्रवाह की भाँति चल रही है।

निरन्तर तैयारी

आत्म-साक्षात्कार इस साधना का उद्देश्य है। उसे वह सत्य के नाम से पुकारता है और अपनी अन्तःप्रेरणा को, अपनी भीतर की आवाज को उसने इस सत्य की, इस साधना की कसौटी बनाया है।

इस सतत साधना के लिए, इस सतत प्रयोग के लिए उसने अहिंसा का मार्ग अपनाया है। उसकी अहिंसा इस सत्य पर निर्भर है कि सृष्टि में जितने भी जीवनमय, प्राणमय या चेतन पदार्थ हैं सब पवित्र हैं। यह भाव रख कर ही मनुष्य सृष्टि के सम्पूर्ण जीवन की अभिन्नता को देख एवं ग्रहण कर सकता है। इस दृष्टि से अहिंसा विश्व की अभिन्नता, एकात्मरूपता की अनुभूति का आवश्यक उपादान है और इस अर्थ में, एक प्रकार से वह स्वयं अपरिणत सत्य ही है। इसमें अपने एवं दूसरे के जीवन-नाश की सब से कम सम्भावना है। इससे शक्ति का क्षय नहीं होता; इससे आत्म-शक्ति जाग्रत करने वाली भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। इसलिए अहिंसा तात्विक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से उसकी साधना का सब से महत्वपूर्ण अंग है।

इस अहिंसा को अपने सतत-प्रयोगों से मांज-मांज कर उसने अत्यन्त दिव्य रूप में हमारे सामने रखा है। उसने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में उसे प्रकाशित कर उस पर युग-युग से पड़ी काई को काट दिया है और उसे निर्मल बना दिया है। केवल जीव के नाश न करने में ही उसकी अहिंसा का अन्त नहीं हो जाता, उसे किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक पीड़ा न देना, न देने की भावना करना, तथा उसके कल्याण की कामना एवं सेवा करना भी, उसी में आ जाता है। इस भाव की परिणति तब तक सम्भव नहीं जब तक साधक में ईर्ष्या-द्वेष, लोभ भय इत्यादि असात्विक—तामसिक भाव भरे हुए हैं। इसलिए सत्य का साधक जब अहिंसा मार्ग का अवलम्ब लेता है तो स्वभावतः उसे प्रारम्भ में ही तमस का त्याग कर देना पड़ता है। ज्यों-ज्यों उसकी अहिंसा शुद्ध एवं निर्मल होती है त्यों-त्यों जीवन की अभिन्नता एवं अविच्छिन्नता की अनुभूति के कारण सत्य उसके सामने स्पष्टतर होता जाता है।

अहिंसा का मर्म

× × ×

बुद्ध के बाद जीवन में नीति की प्रधानता पर इतना जोर देने वाला दूसरा महापुरुष हमारे बीच नहीं आया। (कबीर की याद हमें है पर वह केवल आध्यात्मिक भक्ति में व्यक्त होने वाले नीतिवाद के प्रवक्ता थे।) और यह स्पष्ट है कि जिसने जीवन को नीतिमय कर डाला है वह किसी एक क्षेत्र में ही उसका उपयोग करके चुप नहीं रह सकता। जीवन का प्रवाह अविच्छिन्न है। उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। जब वह प्रत्येक क्षेत्र में एक-रस होकर प्रवाहित होता है तभी वह जीवन है। गांधी ने अपने जीवन की साधना को विश्व के राज-मार्ग पर ला खड़ा किया है और प्रत्येक को उसे अपनाने का निमंत्रण दिया है। अप्रतिकार का, अहिंसा का यह व्यापक प्रयोग ही—जो आज भारतीय राजनीति के

नीति का प्रवक्ता

व्यापक क्षेत्र में वह कर रहा है—उसकी विश्व-राजनीति को सब से बड़ी देन है।

× × ×

यहाँ इसे फिर से कहने की जरूरत है कि अन्तःकरण की स्वीकृति ही उसके प्रत्येक कार्य की कसौटी है। वह इसी तराजू पर सब बातों को तौलता है। इस आत्मिक स्वीकृति के सिवा उसके कार्यों को नियमित करने वाला कोई अधिकारी नहीं, कोई तंत्र नहीं। और दूसरों से भी उसकी यही आशा है कि अन्दर का आत्म-शासन ही सब मानें। इसलिए जनता की सम्मति-असम्मति, यश-अपयश, लोकप्रियता एवं विरोध, सरकार की इच्छा और अनिच्छा का जीवन के विशेष अवसरों पर उसके निर्णय के बीच स्थान नहीं। वह एक नैतिक—आध्यात्मिक अराजकवादी है। जनता ने विरोध किया, नेताओं ने बुरा-भला कहा पर उसने चौरीचौरा के बाद बारडोली-सत्याग्रह बन्द कर दिया। लोग तिलमिला कर, कुड़बुड़ा कर रह गये पर उसने अन्तःप्रेरणा के अनुसार राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच अस्पृश्यता की समस्या लाकर खड़ी कर दी। उसके जीवन का, प्रत्येक कार्य का निर्णायक उसका अन्तःकरण है। इस बात को उसने इतनी प्रधानता दी है कि वह **हमारे समय का नैतिक—'मारल' बैरोमीटर बन गया है।**

'मारल, बैरोमीटर

इस साधना एवं इस साधना की कसौटी के कारण ही राजनीति में भी वह राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं, राजनीतिक तत्ववेत्ता (पोलिटिकल फिलास्फर) के रूप में आया है। राजनीतिज्ञ जनता को संगठित करने का अधिक ध्यान रखता है, राजनीतिक तत्ववेत्ता या प्रवक्ता ('प्राफेट') अपने जीवन में कुछ सिद्धान्तों को प्रकाशित कर राष्ट्र की आत्मा को चैतन्य करता है। उसका सम्बन्ध ऊपरी नहीं, गूढ़ बातों से है। जहां राजनीतिज्ञ केवल शासन-प्रणाली के परिवर्तन के उद्देश्य

राजनीतिज्ञ नहीं, राजनीतिक तत्ववेत्ता

को लेकर चलता है वहाँ तत्ववेत्ता जीवन के ध्येय, जीवन के तत्वज्ञान को—समाज एवं व्यक्ति दोनों में निर्मल एवं विशुद्ध रूप में प्रकट करना चाहता है।

विश्व को देन

गांधी जी की सारी हस्ती जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होने वाले अन्तःकरण-नाशक कार्यों के विरुद्ध एक स्थायी—अविच्छिन्न नैतिक विरोध है। जहाँ कानून मनुष्य की आत्मा के विकास की सुविधा नहीं देता, उलटे उसे धुँधला कर देता है वहाँ कानून का मानना पाप है; जहाँ 'धर्म' विवेक को छोड़ देता है, व्यक्ति एवं समाज की आत्मिक, नैतिक उन्नति में बाधक होता है वहाँ वह त्याज्य है। इस प्रकार के नैतिक अत्याचार को न सहन करना सत्य-शोधक का कर्तव्य है। और इस कर्तव्य में जो कष्ट दिये जायँ उसे शुद्ध हृदय से सहन कर लेना उसका धर्म है। यदि तुम संसार को प्रेम-द्वारा बदलना चाहते हो तो तुम्हें उस के द्वारा पीड़ित होने, घृणा किये जाने, बहिष्कृत होने को तैयार रहना चाहिए। यह गांधी की और उसके द्वारा भारत की, मनुष्य जाति को सबसे बड़ी देन है। और इस के कारण ही इस समय संसार की प्रयोगशाला में उसके साथ बैठाया जा सके, ऐसा दूसरा आदमी दिखाई नहीं पड़ता है।

× × ×

ब्रिटिश साम्राज्य को कैसे परास्त किया?

एक दुबला पतला बूढ़ा आदमी, जिसके रूप में कोई आकर्षण नहीं है और जिसका शरीर जीवन के युद्ध में खोखला-सा हो गया है, इस डेढ़ हड्डी-पसली के आदमी ने कैसे इतने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को परास्त कर दिया और भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक हड़कम्प पैदा कर दी? इस जरा से आदमी के आगे, जिसने अपना प्राण लेने वाले शत्रु को भी निर्भय कर दिया है, कैसे ब्रिटिश सरकार ने आत्म-समर्पण कर दिया और एक महाराष्ट्र का उसके प्रति इतना गहरा

आकर्षण क्यों ?

पहले प्रश्न का जवाब दूसरे प्रश्न में आप से आप प्रकाशित है। इस शरीर से दुर्बल, बाहर से आकर्षण-हीन पुरुष ने एक विशाल राष्ट्र की सारी चेतना और श्रद्धा अपने अन्दर केन्द्रित कर ली है। ब्रिटिश सरकार ने महसूस किया कि गाँधी में भारत की शक्ति केन्द्रित है। भारत में जो कुछ सूक्ष्म, रहस्यमय और विशाल है और जिससे लोहा लेने का कोई साधन युरोप के पास नहीं है, उन सब के प्रतीक रूप में वह विश्व के क्षितिज पर उदय हुआ है। गाँधी यदि हमारी राजनीति में आता और अन्य नेताओं की भाँति—राजनीतिज्ञों की भाँति सरकार की शासन-प्रणाली के दोष दिखाकर, उसके लिए जनता में आन्दोलन करता, उसको संगठित करता तो बहुत सम्भव है कि वह ब्रिटिश सरकार के लिए इतना भय-प्रदान हो उठता। पर उसने तो भूले हुए शेर को शेर बना दिया; उसने राष्ट्र की कमज़ोरी के उस मूल में ही आघात किया, जिसके कारण सब प्रकार की पराधीनता का उसमें जन्म होता है। उसने लेनिन की भाँति एक विचार—'आइडिया'—को, जीवन की एक 'फिलासफी' को लेकर अपना काम शुरू किया और लेनिन की भाँति ही साम्राज्यवाद के लिए काल हो गया।

उसने अपने युद्ध का अस्त्र—अहिंसा—ऐसा निकाला जिस के प्रयोग की सर्वोत्तम विधि वही जानता था। विरोधी को इस अस्त्र का कुछ ज्ञान नहीं था। फिर हिंसात्मक प्रवृत्तियों को लेकर लड़ने वाला अहिंसा और प्रेम के सामने, युद्ध में भी, नगण्य-सा हो जाता है। उसका भौतिक बल इस नैतिक अस्त्र के सामने तुच्छ है अतः हिंसक के लिए अहिंसक अति भयप्रद प्रतिद्वन्द्वी है। सारा रोमन-सम्राज्य एक अहिंसक ईसा की फूँक में उड़ गया। उसके रक्त की बूँदों से वह ज्वाला निकली जिसमें विरोध जल गया: विरोधी के अन्दर जो प्रेमी था, जो सत्य था, वह भर रह गया।

और दूसरे प्रश्न की समीक्षा तो हम पहले ही कर चुके हैं—यदि

उसे समीक्षा कह सकें; क्योंकि ठीक-ठीक अर्थ में तो उसकी समीक्षा की नहीं जा सकती। भारत के इस पुरुष में इतना आकर्षण क्यों? उससे बड़े मेधावी हमने देखे; उससे कहीं श्रेष्ठ वक्ताओं के शब्द आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं; उससे कुशल राजनीतिज्ञ अपनी दाँव-पेंच की अद्‌भुत कला की स्मृतियाँ हमारे पास छोड़ गये हैं। फिर उसमें ऐसी क्या बात है, जिसने सब की स्मृति को धुँधला कर दिया है?

भारत की आत्मा का प्रतिष्ठापक

इसका यदि हो सके तो एक-मात्र यही उत्तर हो सकता है कि उसने भारत के हृदय की मूर्छित दिव्य शक्ति को चैतन्य किया है; उसने हमारी मनुष्यता की मरहमपट्टी करके उसे सचेत किया है, वह हमारे हृदय के अत्यन्त रहस्यमय खंडों को समझकर उनको उबार सका है। औरों ने जहाँ राष्ट्र के शरीर के रोगों को दूर करने का प्रयत्न किया वहाँ उसने उसके हृदय की व्यथा को समझा। और उसके युग-युग से संचित संस्कार में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है उसे निकाल कर—मथ कर उस मंथन को ही उसके उद्धार का साधन बनाया। बहुत से लोग जिन्होंने गांधी के टुकड़े देखे हैं पर पूरा पूरा नहीं देख पाये हैं, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उसके हस्तक्षेप पर उत्तेजित होते हैं पर गांधी का अन्ध भक्त न हो कर भी मैंने सब तरफ से उसे देख-देख कर और अत्यन्त निर्दय कसौटियों पर कस-कस कर पाया है कि उलटे राजनीति की अपेक्षा इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने के वह अधिक योग्य, अतः अधिक अधिकारी है। क्योंकि तत्वतः वह भारत का राजनीतिक नेता नहीं, सांस्कृतिक नेता है। हमारी संस्कृति की स्पिरिट को जितनी गहराई से उसने समझा है, कदाचित् ही किसी दूसरे भारतीय ने समझा हो। वह हमारी पंगु हिन्दू संस्कृति का पंख है। उसने उसे उड़ा कर फिर विश्व की सभ्यताओं की दौड़ में ला खड़ा किया है और उसका सारा जीवन ही मानों अन्य संस्कृतियों की असारता को चुनौती दे रहा है।

इसीलिए वह, जाति के—राष्ट्र के हृदय में पैठ कर भारतीय मजूर को, भारतीय किसान को पहचान सका है, इसीलिए भारतीय नारी का तात्विक अर्थ उसने समझा है और इसीलिए वह हमारी सभ्यता की इन महत्वपूर्ण इकाइयों को, पूंजीपतियों, राजाओं तथा व्यापारियों तथा शिक्षित एवं प्रतिष्ठित लोगों से, जो फालतू शृंगार के रूप में आ गये हैं, अधिक महत्व देना चाहता है — अपने जीवन में तो देता भी है। और यही कारण है कि बिना देखे-सुने काठियावाड़ का भील, मध्यप्रांत का गोंड़ और आसाम के वन्य मनुष्य ने भी अपना जीवन उसके जीवन में जोड़ दिया है। यह भारतीय हृदय पर उसके असाधारण अधिकार का कारण है।

आदर्श और व्यवहार

गाँधी की सफलता का दूसरा कारण यह है कि उसके अन्दर आदर्शवादी और व्यवहारवादी मिलकर एक हो गया है। बीसवीं शताब्दी के संसार ने रोम्यारोलां-से आदर्शवादी और स्व० लेनिन से अद्भुत कर्मनिष्ठ महापुरुष को देखा है पर गाँधी से उनकी भी तुलना नहीं की जा सकती—क्योंकि गांधी, रोम्यारोलां की भाँति, जहाँ प्रथम श्रेणी का आदर्शवादी है; जहाँ मानव-जीवन के उच्चतम आदर्श को उसने जीवन का ध्रुवतारा बनाया है तहाँ वह कर्म में स्वयं ओतप्रोत हो गया है। इस विषय में—आदर्श और व्यवहार की एकता में—वह वर्त्तमान संसार में बेजोड़ है और निश्चय ही संसार के महत्तम कर्मयोगियों में उसे स्थान मिलेगा।

एक कारण

और उसका एक कारण है। वह जीवन को उसकी सम्पूर्णता में ग्रहण करता है। हम लोगों की तरह जीवन के खण्ड खण्ड करके उन्हें नहीं अपनाता। इसलिए हम लोगों में से जहाँ कोई राजनीतिज्ञ, कोई समाज-सेवक, कोई आदर्शवादी और कोई व्यावहारिक बनकर बैठता है वहाँ वह राजनीतिज्ञ, आदर्शवादी, समाज-सेवक और व्यावहारिक सब एक ही में है।

जीवन के इस प्रकार टुकड़े नहीं किये जा सकते कि जो उच्च सिद्धान्त एक क्षेत्र में ठीक हो वही दूसरे में अनुचित;—अभी तक ऐसा ही हो रहा है पर अपने दिव्य प्रयत्नों द्वारा वह सभी क्षेत्रों का मेल मिला रहा है। पहले राजनीति में धर्म को स्थान न था पर उसकी सतेज वाणी कहती है—"वह कौन सा क्षेत्र है जहाँ धर्म को स्थान नहीं?" जीवन के भिन्न दृष्टिकोणों के कारण ही यह संकुचितता पैदा होती है। यदि हम एक प्रश्न को चारों ओर से देखें तो यह संकुचितता कैसे रहे? जैसे गांधी जी के लिए राजनीति सर्वसाधारण के कल्याण का साधन है। इस कल्याण का स्थूल तात्पर्य तो सब के लिए रोटी और कपड़े की समुचित व्यवस्था होना है। अब इस रोटी और कपड़े को ही लें तो राष्ट्र या राज्य की दृष्टि से यह राजनीति एवं अर्थ-नीति का प्रश्न है। समाजशास्त्री की दृष्टि से समाज में धन के न्यायपूर्ण बटवारा और उचित समाज-व्यवस्था का प्रश्न है। और मानवता की दृष्टि से नीतिशास्त्र, तत्त्वज्ञान और धर्म का प्रश्न है इसीलिए इन अलग-अलग दृष्टिकोणों से विचार करने वाले, इन क्षेत्रों को अलग-अलग लेकर चलने वाले जहाँ उसे संकुचित रूप में ग्रहण करते हैं वहाँ गांधी उसे धर्म भी मानता है, राजनीति भी मानता है और समाज-सुधार भी। इन तीनों को मिलाकर वह एक में—उस प्रश्न की परिपूर्णता में उसे देखता है। इसीलिए गांधी वर्त्तमान संसार में अपने ढंग का अकेला ही आदमी है। और इसीलिए अमेरिका के पादरी होम्स के शब्दों में कहना चाहें तो कहा जा सकता है—"जब मैं रोलां का ख्याल करता हूँ तो मुझे टालस्टाय का ध्यान आता है। जब मैं लेनिन की बात सोचता हूँ तो नेपोलियन का ख्याल आता है पर जब मैं गांधी का ध्यान करता हूँ तो मुझे क्राइस्ट ध्यान आता है।"*

---

*When I think of Rolland, I think of Tolstoi. When I think of Lenin, I think of Nepoleon. But when I think of

जन्म से वनिया, आदर्श से ब्राह्मण गाँधी में भारतीय समाज की व्यवस्था पूर्णतः प्रतिविम्बित है। धर्म और आदर्श की प्रतिष्ठा में लगने वाला उसका त्याग और तपस्या का जीवन आदर्श 'ब्राह्मण' का जीवन है। इस आदर्श को कर्ममय बनाने में उसका उत्साह, उसका युद्ध, उसकी लगन एक आदर्श 'क्षत्रिय' को प्रकाशित करती हैं। उसकी सहिष्णुता, उसका परिश्रम उसकी समझौते की व्यावहारिक बुद्धि, उसके श्रेष्ठ 'वैश्य' का उदाहरण हैं और मजदूर के प्रति, अछूत के प्रति उसका असीम प्रेम, उसका निरन्तर सेवामय जीवन, उसकी अपने को 'भंगी' कहने की उत्सुकता और किसान-मजूर-जैसा स्वच्छ सीधा-सादा परिश्रमी जीवन विताने की भावना उसे श्रेष्ठ 'शूद्र' के रूप में हमारे सामने लाती है। इस प्रकार वह भारतीय सभ्यता का शुद्ध समीकरण एवं समन्वय है।

भारतीय समाज व्यवस्था का प्रतिविम्ब

× × ×

इसके अलावा भी गाँधी को पूर्णतः समझने के लिए उसके जीवन को वहुत विस्तार और गहराई से देखने की ज़रूरत है और थोड़ी-सी जगह में यह संभव नहीं। 'उसे एक वाक्य में प्रकट नहीं किया जा सकता। क्योंकि एक वाक्य में गाँधी का संक्षेप करना, निचोड़ निकालना एक सम्पूर्ण तत्वज्ञान, नीतिशास्त्र, धर्म, अर्थनीति, एवं राजनीति का निष्कर्ष निकालने-जैसा है।'*

Gandhi, I think of Jesus Christ. He lives His life, he speaks His word; he suffers, strives, and will some day nobly die, for His kingdown upon earth."

*"If any one could sum.up Gandhi in a paragraph, that would be a great achievement. But that is well nigh impossible, for to sum up Gandhi is to sum up a whole philosophy, religion ethics, economics and politics."

—B. Pattabhisitaramiah, 'Gandhi, the Judge unto Him,

पर एक बात तो उसके जीवन से स्पष्ट है और वह यह कि वह अपने जीवन के साधारण उपकरण—'स्टफ' को लेकर धीरे-धीरे गढ़ा गया है. श्रेष्ठ मूर्तिकार जिस पत्थर से अत्यन्त श्रेष्ठ मूर्ति का निर्माण करता है—जिसमें जीवन बोलता हो, उसी से एक साधारण संगतराश टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियाँ ही बना पाता है। गाँधी ने अपने आत्मिक उपकरणों को तराश तराश कर उसे अपने सतत् निरीक्षण-परीक्षण से आज एक दिव्य रूप दे दिया है। महापुरुषों की भी दो श्रेणियाँ होती हैं। एक वे जो अपने संचित दिव्य संस्कारों के कारण एकाएक हमारे सामने ज्योतिर्मय रूप में प्रकट होते हैं। उनका निर्माण आरम्भ से ही कुछ असाधारण होता है—स्वामी रामतार्थ ऐसे ही एक महापुरुष थे। दूसरे वे जो निरन्तर की साधना एवं प्रयत्नों से, तिल तिल गढ़े जाते हैं। जो साधारण मनुष्य के उपकरण ले कर गिरते-पड़ते उठते आगे बढ़ते जाते हैं और अन्त में अपने अन्दर की कमजोरियों को दूर कर दिव्य रूप में हमारे सामने आते हैं। वे धीरे-धीरे गढ़े जाते हैं। गाँधी ऐसा ही महापुरुष है। सब न रामतीर्थ हो सकते हैं न गाँधी पर सब जहाँ गाँधी का अनुकरण कर सकते हैं वहाँ सब रामतीर्थ के पथ पर नहीं चल सकते। इस दृष्टि से भी वर्त्तमान युग में गाँधी हमारे अनुकरण के लिए सर्वोत्तम महापुरुष है। वह प्रत्येक क्षेत्र में काम करने वाले ईमानदार कार्यकर्त्ता के लिए ध्रुव-तारा के समान मार्ग-दर्शक है।

सतत प्रयत्न से गढ़ा हुआ महापुरुष

× × ×

आज जब हिंसा का दैत्य मानव-जाति को निगलने के लिए अपना भयावना मुख फैलाता जा रहा है; जब मानवता की पीड़ा पर राष्ट्रों की झूठी समृद्धि के महल खड़े किये जा रहे हैं, जब दुनिया के श्रेष्ठ पर गरीब मनुष्य प्राणी के दैन्यमय जीवन को बिछाकर उस पर विलास सतत (ताण्डव) नृत्य कर रहा है; जब घायल, पीड़ित अपमानित एवं

दर्द से कराहती हुई मनुष्यता सर्वग्राही अन्धकार में छटपटा रही है तब उसकी एक मात्र आशा गाँधी के रूप में क्षितिज पर फूट रही है। इस दुबले पर अत्यन्त शक्तिमान महापुरुष में विश्व की आशा और मानव-जाति का निकट भविष्य, बड़ी दूर तक केन्द्रित है। इसलिए यदि उसकी व्यापक अहिंसा का प्रयोग विफल हुआ तो संसार के लिए बड़ी भयप्रद बात होगी।

इस समय तो वह हमारी आशा का पंख है। हमारी-जीवन निशा का दीपक है। वह विश्व की आध्यात्मिक साहसिकता का प्रतीक है। इस घोर अन्धकार में उसकी डेढ़ हड्डी-पसली की मूर्ति ध्रुवतारे की तरह चमक रही है!

× × ×

इस तरह शुरू से अन्त तक हम देखते हैं कि गाँधी जी का जीवन एक तपस्वी का जीवन है। वह सदा सत्य की शोध करते रहते हैं और उनका जीवन आत्म-परीक्षाओं का जीवन है जो दिन-दिन दिव्य और दिव्यतर होता जा रहा है। और आज तो वह न केवल भारत वरन् संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में हैं।

गाँधी—अपने विविध रूपों में

O White Innocence !
That thou shouldst, wear the mask of guilt to hide
Thine aweful and serenest countenance.
From those who know thee not !

—Shelly.

—४—

तपस्वी गाँधी :

गाँधी के सारे जीवन में ही साधना और तपस्या ओत-प्रोत है। ज्यों-ज्यों उसमें सत्य की प्रेरणा निश्चित एवं स्पष्ट रूप पकड़ती गई त्यों-त्यों जीवन में सादगी, कष्टसहन और अपरिग्रह को उसने बढ़ाया है। ब्रह्मचर्य, अस्वाद और अपरिग्रह को, जो एक तपस्वी जीवन की आधार-शिला है, उसने सम्पूर्ण आग्रह से अपना लिया है और बार-बार अपने हृदय को उलट-पुलट कर देखा करता है—उसे कसौटी पर कसा करता है कि कहीं उसमें शिथिलता तो नहीं आ रही है—कहीं भूल तो नहीं हो रही है। इस विषय में वह अत्यन्त निर्दय परीक्षक है,—ऐसा निर्दय जिसकी निर्दयता की मिसाल नहीं।

निर्दय आत्म-परीक्षक

खाने के लिए बकरी का दूध और चंद चीजें, जो गरीबों के घर में भी मिल सकें, उसके लिए बस हैं। उसमें भी मिर्च नहीं, मसाले नहीं; स्वाद के नाम पर कुछ-न-जैसा है। कपड़े के नाम पर एक लंगोटी और एक चादर! रेल में सैकड़ों मील लम्बा सफर तीसरे दर्जे में करता है। पाखाना साफ करने और जूता बनाने से लेकर संसार-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों के बराबर बैठ कर

अनावृत जीवन

बातें करने वाले इस अद्भुत पुरुष ने विधवा की निस्पृह सरलता और तपस्यावृत्ति को जीवन में अपना लिया है। वह सदा जागरूक रहता है। ईर्ष्या-द्वेष, दंभ, एवं क्रोध को उसने अपने मन से निकाल फेंका है। फिर भी अपनी अपूर्णताओं पर, पश्चात्ताप-दग्ध प्रेमी की भाँति उसका हृदय जल रहा है।

× × ×

जन-सेवा की गहरी भावना

१९१५ की बात है। गाँधी ने गोखले के एक चित्र का उद्घाटन किया था। उद्घाटन के पहले एक भजन गाया गया। जब उद्घाटन करने के लिए गाँधी खड़े हुए तो भजन का उल्लेख करते हुए कहा—"मैंने भजन में पाया कि प्रभु उनके साथ हैं जिनके वस्त्र फटे एवं धूल-धूसरित हैं। मेरा ध्यान तुरन्त अपने वस्त्र के निचले भाग पर गया। मैंने देखा कि वह धूसरित नहीं है और जीर्ण भी नहीं है। वह बिना एक धब्बे के—बिलकुल साफ है। ईश्वर मुझमें नहीं है!" इस भाषण में गांधी की तपस्या की भित्ति स्पष्ट दीख पड़ती है। उसका हृदय सदा दीन-दुखियों और गरीबों के बीच रहता है। वह सदा उनकी सेवा, उनकी रक्षा, उनकी सहायता में लगा रहता है।

इस सम्बन्ध में सतत जागरूक रहने के लिए वह अपने को (और अपने द्वारा सब ईमानदार कार्यकर्त्ताओं को) पुकार कर कहता है—"दीन-दुखियों की निष्काम सेवा से बढ़ कर पवित्र और प्रभु की कोई पूजा नहीं है।" और—"ईश्वर इन्हीं गरीबों के बीच रहता है क्योंकि वे उसे अपने एक मात्र शरण एवं रक्षक के रूप में अंगीकार करते हैं। इसलिए उनकी सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है।" उसने दरिद्र-नारायण के साथ अपना जीवन मिला दिया है। कोई कार्य, कोई सेवा, कोई विषय उसे इतना प्रिय नहीं जितना दरिद्रों की सेवा है। किसानों का दुःख उसे द्रवीभूत कर देता है। चम्पारन, खेड़ा, बारदोली सब उसकी संवेदनशीलता का परिचय देते हैं। उसने गरीबी

को सूम के धन की तरह अपना लिया है और इसलिए वह गरीब को अपने अन्दर देख सका—पा सका है और इसीलिए गरीब भी उसे पा सके हैं। एक पैसे की फिजूलखर्ची उसे चोरी करने के समान मालूम पड़ती है। एक बार की बात है कि साबरमती आश्रम के उनके कमरे में एक मोखे से धूप आती थी और उनके मुख पर पड़ती थी। इससे इनको तकलीफ होती थी इसलिए उन्होंने उसे बन्द करने की इच्छा प्रकट की। एक आदमी बढ़ई को बुला लाया और उससे शटर (बन्द करने और खुलने वाला रोशनदान) लगवा लिया। गाँधी जी की सम्मति से ही यह काम हुआ पर उस समय अन्य कामों में लगे रहने के कारण उन्होंने बारीकी से इस प्रश्न पर विचार नहीं किया था। बाद में जब विचार किया तो उन्हें मालूम हुआ कि मैंने पैसे का अपव्यय और दुरुपयोग किया है और यह काम एक दफ़्ती या कपड़े का टुकड़ा कीलों द्वारा लगा देने से भी हो सकता था। उस दिन शाम की प्रार्थना में पश्चात्ताप-दग्ध वाणी में उन्होंने अपनी दुर्बलता स्वीकार की।

दूसरी घटना

इसी प्रकार एक दूसरे अवसर पर एक फौजदारी मुकदमे में आश्रम के सदस्य श्री छगनलाल जोशी को गवाह के तौर पर अदालत के सामने उपस्थित होने का सम्मन आया। अदालत का स्थान बहुत दूर था। और सम्मन के साथ राह-खर्च न आया था। आश्रम के सदस्य की हैसियत से छगनलाल के पास अपना पैसा या समय न था। उन्होंने मामला गाँधी जी के सामने रखा। गाँधी जी ने निर्णय किया कि आश्रम का धन सार्वजनिक धन है और ऐसी बातों में खर्च नहीं किया जा सकता। फलतः छगनलाल गवाही देने न जा सके। इस जुर्म में गिरफ़्तार हुए पर पीछे जब अदालत को अपनी भूल मालूम हुई तो छोड़ दिये गये।

दाँड़ी-यात्रा के समय भी साथियों—द्वारा कुछ अपव्यय होने पर उन्होंने बड़े दुःख के साथ कहा था—"आह! हम ईश्वर के नाम पर

—पाँच—

तत्वज्ञानी के रूप में :

अपने सत्य-अहिंसा (सत्याग्रह) के जीवन-व्यापी प्रयोग करके गाँधी ने उसे एक सम्पूर्ण तत्वज्ञान के रूप में परिणत कर दिया है। उसका जीवन आदि से अन्त तक सत्य की एक चिर-साधना है। 'रोम्यां रोलां' के 'ज्याँ क्रिस्तोफ़' का नायक जैसे अनेक क्षेत्रों से गुज़रता है पर जीवन के प्रत्येक रंग में वह एक साधक है जिसके अन्दर सत्य प्रत्येक अनुभव के साथ पनपता और विकास पाता है, उसी प्रकार गाँधी के प्रत्येक कार्यक्रम में सत्य की अवाधित साधना निरन्तर चलती रही है और आज भी उसी प्रकार चल रही है। उसके कार्य-क्रम वदलते रहे हैं, उसका क्षेत्र वदलता रहा है; उसके वाह्य आवरण में उतार-चढ़ाव होते रहे हैं पर इन सबके बीच गाँधी की दिशा ज्यों की त्यों—एक—रही है।

जैसा कि सत्यालोक के प्रत्येक दर्शन में होता है, गाँधी का जीवन भी किसी देश या जाति की सीमा में बँधा नहीं है। वह स्वयं कहते हैं "मेरे धर्म में कोई भौगोलिक बन्धन नहीं है।"

नीति का प्रकाश

गाँधी का सम्पूर्ण तत्वज्ञान नीति-प्रधान है। आत्मानुभव की दृष्टि से जो सदाचरण आवश्यक हैं उन्हें ही वे धर्म मानते हैं और इसीलिए नीति और धर्म में अन्तर नहीं देखते। जीवन के प्रत्येक पग पर शुद्ध नैतिकता पर जोर देते हैं। वस्तुतः उनका तत्वज्ञान ही आध्यात्मिक की अपेक्षा नैतिक अधिक है। नैतिकता से स्वयं आध्यात्मिकता का जन्म होता है, यह उनके जीवन से ही स्पष्ट है। उनका धर्म व्यावहारिक आध्यात्मवाद पर निर्भर है। शुद्ध निःस्वार्थ सेवा इस धर्म का साधन है; सार्वदेशिक प्रेम उस सेवा का साध्य है। इसीलिए

उनके धर्म के लिए जाति या देश की मर्यादा आवश्यक नहीं। प्रत्येक श्रेणी और मर्यादा का आदमी उसे कर सकता है। भगवान् बुद्ध के बाद धर्म की तात्विक भावना को इतने सुगम रूप में जगत् के सामने और किसी ने न रक्खा।

सत्य गाँधी के तत्वज्ञान का ध्रुवतारा है और वही उसका लक्ष्य भी है। अहिंसा इस सत्य की सिद्धि का साधन है। अहिंसा का विकसित और परिणत रूप प्रेम है। उच्च प्रेम से सब कुछ सम्भव है। इस आधार को लेकर ही गाँधी चलता है। ऐसी अहिंसा—प्रेम—एक प्रकार का अपरिणत सत्य ही है। वह विरोधी का प्रहार हँसते-हँसते सहन करती है। और तब तक सहन करती है जब तक उसका क्रोध हार नहीं जाता। इस प्रकार अक्रोध से क्रोध को जीतकर अहिंसा का प्रयोक्ता अपना और विरोधी दोनों का कल्याण करता है। और फलतः दोनों के बीच प्रेरणा की एकता (आत्मैक्य की भावना) आती है। इसके अवलम्बन से ईर्ष्या, द्वेष, भय, लोभ इत्यादि का—तमस् का—लोप होता है। और ज्यों ज्यों अहिंसा पूर्णतर प्रेम में परिणत होती है त्यों-त्यों सत्य का अनुभव अधिक स्पष्ट होता है। तमस् एवं रजस् के क्रमिक लोप और सत् के क्रमिक विकास के साथ स्वभावतः आध्यात्मिक अनुभूति का जन्म होता है। ज्यों-ज्यों साधक में सत्यानुभव की अधिक शक्ति आती है त्यों-त्यों उसके आत्मदर्शन की क्षमता बढ़ती है। वह जगत् को आत्ममय देखने लगता है। यह सर्वात्म भाव ही विश्वात्मानुभव की कुञ्जी है।

तत्वज्ञान का ध्रुवतारा

इस प्रकार सत्य और अहिंसा दोनों सामान्य एवं सर्वश्रुत शब्दों को गाँधी ने अपने जीवन की साधना में अत्यन्त दिव्य और तात्विक रूप दे दिया है। उनके लिए जो सत्य है वही परमेश्वर है। यह सत्य सर्वव्यापक है—उसके बिना किसी की स्थिति नहीं। अतः उसका प्रयोग प्रत्येक

गांधी फिलासफी कैसे चलती है?

क्षेत्र में किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में गाँधी मानव-जीवन के विकास की अधिक से अधिक सुविधा देता है। क्योंकि सत्य के साथ अहिंसा मिली रहने से, जहाँ एक आदमी अपने आत्मिक विकास की सुविधा पाता है वहां उसका उपयोग करने में उसे दूसरों के विकास के लिए भी सुविधाओं का ख्याल करना पड़ता है। मेरा ख्याल है कि गाँधी का यह मानना है कि बिना इस दृष्टि के कुछ व्यक्तियों के विकास का दरवाज़ा तो खुला रहता है पर ऐसी सार्वदेशिक परिस्थिति पैदा हो जाती है जिससे सामूहिक रूप से मनुष्य का विकास रुक जाता है और अन्त में इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति और समाज दोनों सच्चे विकास एवं सुख की सुविधा से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार भारतीय और युरोपीय तत्त्वज्ञान के दो दृष्टि-बिन्दुओं को उन्होंने मिला दिया है। और आत्मशोध एवं समाजसेवा का अद्भुत समन्वय अपने जीवन एवं तत्त्वज्ञान में किया है।

यों अहिंसा, उनके तत्त्वज्ञान में, स्वयं एक अपरिणत सत्य है फिर भी प्रमाद न हो इसलिए वह उस पर अलग से जोर देते हैं। लक्ष्य

अपरिग्रह

के विषय में प्रमाद न हो इसलिए उन्होंने सत्य को जहाँ लक्ष्य बनाया और अहिंसा को उसका साधन, वहाँ साधक की पवित्रता की रक्षा और उसे प्रलोभनों से बचाने के लिए कुछ और शर्तें भी उन्होंने लगा दी हैं। इनमें अपरिग्रह मुख्य है। उनकी 'फिलासफी' में समाज की दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्व है। जितनी चीजों के बिना जीवन-यात्रा चल ही न सके उतनी ही

अपरिग्रह के दो पहरेदार

चीजें ग्रहण करने का व्यक्ति को अधिकार है। इसलिए अपरिग्रही देश-सेवक के लिए यह डर नहीं है कि वह देश-प्रेम के उन्माद में विश्व को भुला देगा। फिर इस अपरिग्रह के पहरेदार के रूप में अस्तेय और अस्वाद को लगा दिया है। यों तो शुद्ध अपरिग्रह में ये दोनों बातें आ जाती हैं परन्तु जोर देने के ख्याल से इनको अलग ही रक्खा है।

इस अपरिग्रह तथा व्यक्तिगत साधना एवं जाति के उचित विकास के लिए ब्रह्मचर्य एक बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण सत्य है। उनका अस्वाद उनके ब्रह्मचर्य में भी आ जाता है। धार्मिक प्रमाद भी साधक के पथ में बड़ी बाधा है। इसीलिए सर्वधर्मों के प्रति आदरभाव रखना भी उनकी 'फिलासफ़ी' में एक जरूरी शर्त है। इस प्रकार सत्य के लिए अहिंसा, अहिंसा के लिए अपरिग्रह, अपरिग्रह के लिए ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य के लिए अस्वाद, अस्वाद के लिए अस्तेय आवश्यक हैं और गाँधी जी का नीतिशास्त्र या तत्त्वज्ञान इन्हीं सिद्धान्तों पर आश्रित है।

इस प्रकार गाँधी ने अपने नीतिधर्म को आत्म-साक्षात्कार के सुशृंखल तत्त्वज्ञान के रूप में जगत् के सामने रक्खा है।

समाज-परिष्कारक गाँधी :

यों गाँधी के सारे कार्यों ने ही समाज पर असर डाला है और उसके दोषों का दूर तक परिष्कार किया है, किन्तु इसके अलावा और भी काम उसने किये हैं जिनके द्वारा सीधे-सीधे समाज-सुधार का प्रश्न हल हुआ है। इसमें अस्पृश्यता-निवारण, स्त्रियों की जागृति एवं खान-पान में जातीय भेद का निवारण मुख्य हैं। अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को तो उसने अपने जीवन का मुख्य कार्यक्रम बना लिया है। जो आत्म-साक्षात्कार के लिए विकल है और जो सर्वात्मभाव को लेकर जीवन में सत्य की साधना कर रहा है उसके लिए यह सम्भव ही कैसे हो सकता है कि वह मनुष्य मनुष्य के बीच घृणा फैलाने वाली अस्पृश्यता की कुत्सित प्रथा का समर्थन करे। इसीलिए उसकी दृष्टि में 'अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलंक है।' और 'हिन्दू धर्म ने अस्पृश्यता को स्वीकार कर पाप किया है। और हमें साम्राज्य में अछूत बना दिया है।' गाँधी चाहता है कि यदि उसका जन्म हो तो भंगी के घर हो, जिससे वह उनके बीच रहकर, उन्हीं का होकर उनकी सेवा कर सके। १९२१ में उसने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि जिन दो आकांक्षाओं ने मुझे जीवित रखा है उनमें एक अस्पृश्यता-निवारण है और दूसरी गोरक्षा। जीवन के आरम्भ से ही हम देखते हैं कि अस्पृश्यता को उसके हृदय ने कभी कबूल नहीं किया। दक्षिण अफ्रिका में उसने इसे क्रियात्मक रूप दिया और इसके कारण कुटुम्ब में जो तूफान उठे, उनका सामना किया। जब कोचरब में सत्याग्रह-आश्रम खुला तो अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को उसने

अस्पृश्यता-निवारण

अपने जीवन में स्थायी रूप से ग्रहण किया और तब से लक्ष्मी (एक अछूत कन्या, जिसका विवाह १६३३ में हुआ था) उनकी पुत्री के रूप में आश्रम में पलती रही है। १६२४ से कांग्रेस कार्यक्रम में भी उसमें अस्पृश्यता-निवारण को महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। हिन्दू दृष्टिकोण छोड़ दें,—तो मनुष्यता की दृष्टि से भी, और राष्ट्रीय दृष्टि से भी, अस्पृश्यता भारत के लिए एक बड़ा खतरा है। इसलिए कांग्रेस के विधायक कार्यक्रम में उसका मुख्य स्थान है। और इस समस्या के लिए कई बार वह अपने जीवन की बाजी भी लगा चुका है। तीन बार प्रभु से लड़ाई लड़ी है। जिस राक्षस ने हमारे सुधारकों को युगों तक तंग किया, जो हमारे प्रयत्नों पर उपेक्षा-पूर्ण अट्टहास करता रहा, जिसने हमें विदेशी बाजारों में—मेयो इत्यादि की किताबों में—अपमानित किया वह आज इस असाधारण पुरुष के प्रहारों से दम तोड़ रहा है।

एक दिन जो मन्दिर स्वच्छता और पवित्रता के केन्द्र थे; जहाँ से हमें आत्मिक प्रकाश मिलता था और संसार-यात्रा में थके, निराश जनों को जहाँ श्रद्धा जीवन देती थी वहाँ आज अस्पृश्यता ने मानव धर्म को बलिदान कर दिया है। वे जोर-जबरदस्ती के अड्डे हो रहे हैं। लोग यह भूल गये हैं कि धर्म आत्माओं को नियोजित करता है, पृथक नहीं। और जो मिलाता है, वृद्धि करता है, विकसित करता है, वही सत्य है—वही धर्म है। श्रद्धा अन्धविश्वास नहीं है: वह मानवीय अन्तःकरण का पंख है; वह आत्मिक सत्यों को ग्रहण करने वाली मानव-हृदय की उदार भावना है। धर्म के नाम पर आज जो हो रहा है, वह कितना व्यथाकारी है? वस्तुतः अस्पृश्यता की समस्या तो सामाजिक समस्या है; धर्म से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं। गांधी ने इस अमानुषिक प्रथा को दूर करने के लिए अपने सत्याग्रह से, अपनी तपस्या से कार्यशक्ति की एक लहर हिन्दू समाज के अन्दर उत्पन्न कर दी है। और आशा की जाती है कि हिन्दू समाज इस

चिरसंचित गन्दगी को इस लहर में धो डालेगा।

स्त्रियों की अभूतपूर्व जागृति में गाँधी एक मुख्य कड़ी है। उसने सत्याग्रह आन्दोलन का संचालन इस ढंग से किया कि जो बातें दो साल पहिले अनहोनी समझी जाती थीं, वे सम्भव हो गईं। शतशत बहिनों ने पर्दे को तोड़कर मातृभूमि की वेदी पर अपनी पूजा, अपनी भेंट अर्पित की है और इन बहिनों का त्याग, कष्टसहन और वीरता की गाथाएँ हमारे इतिहास के उज्ज्वलतम पृष्ठों में स्थान पायेंगी। भारतीय नारी ने अपनी शक्ति, अपनी असीम सम्भावनाओं को अच्छी तरह पहिचान लिया है। वह जान गई है कि वह न केवल अपने बच्चों की माता और अपने पति की चिर-संगिनी है; वह न केवल कुटुम्ब को अपने चिर-स्नेह के अमृत से सींच सकती है वरन् देश और समाज के भविष्य-निर्माण के कार्य में भी किसी से पीछे नहीं है। अभी तक अबला, दुर्बल, शिथिल, दबी और दबाई हुई, तथा दयनीय इत्यादि अनेक अनुपयुक्त विशेषणों से पुकारी जानेवाली भारतीय नारी का अत्यन्त दिव्य और तेजस्वी रूप सत्याग्रह-युद्ध में प्रकट हुआ। और इसका श्रेय, बहुत बड़ी मात्रा में, गाँधी को है।

स्त्रियों का जागरण

पर गाँधी की भारतीय नारी आँखों में चश्मा, हाथ में बैग लेकर आफिस जाने वाली नारी नहीं है। न वह पाउडर-भूषित मुख और 'लिपस्टिक'—रंजित ओष्ठों तथा बार-बार 'वैनिटी बाक्स' के उपयोग द्वारा लोगों का ध्यान अपनी ओर—अपने रूप की ओर आकर्षित करने वाली रमणी है। वह नारीत्व के प्रकाश और मातृत्व की दिव्य आभा से दमकती हुई, पुरुष की सच्ची सहचरी है। उसके हृदय में सहानुभूति है, दया है। वह अन्नपूर्णा है; वह कुटुम्ब को स्नेहदान करने वाली है और वही उसका असली क्षेत्र है। जगद्धात्री की प्रतिनिधिरूपा यह भारतीय नारी, जिसमें श्रद्धा है, विश्वास है, तेज है, सेवा है, धर्म है, गाँधी की आदर्श नारी है।

परदा-प्रथा हटाने, विवाह-प्रथा को शुद्ध धार्मिक संस्कार का रूप देने और उसमें आदर्श सादगी लाने का प्रयत्न गांधी की ओर से बराबर होता रहा है। खान-पान में असाधारण स्वच्छता और पवित्रता का पालन करते हुए उसने जातिगत छूतछात को दूर भगाने का काम भी, एक सीमा तक, किया है। आश्रम में शुरू से, विभिन्न देशों, वर्णों एवं जातियों के भाई-बहिन साथ बैठकर खाते हैं। तथा दूसरे हजारों राष्ट्रीय तथा सामाजिक कार्यकर्ता इस पद्धति का पालन अपने जीवन में करते हैं।

अन्य सुधार

अपने पुत्र देवदास का विवाह ब्राह्मण-कन्या लक्ष्मी देवी (श्री राजगोपालाचार्य की पुत्री) से करके गांधी ने विवाह-प्रथा का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया है। यद्यपि यह वर्ण को मानता है पर शुद्ध स्नेह की अवस्था में जाति, वर्ण और प्रान्तीयता के बन्धनों को तोड़कर भी विवाह करने को वह धर्म-सम्मत मानता है। उसके लिए धर्म की प्रेरक भावना—(स्प्रिट ऑव रिलीजन) मुख्य है। आचारों का निर्णय उसी के अनुसार होना चाहिए।

इस प्रकार गांधी ने समाज-सुधारक के रूप में भी इतना काम किया है, जिससे उसका नाम हमारे सर्व-श्रेष्ठ सुधारकों के साथ लिया जा सकता है।

—सात—

लेखक और कलाकार गाँधी :

शैली और भाव का राजा

बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि गुजराती साहित्य को उसके वर्तमान रूप में लाने का कितना श्रेय गाँधी को है। गुजराती भाषा, आज जो एक नूतन विचार-प्रवाह का साधन बन गई है, आज उसमें जो शक्ति हम पाते हैं, आज उसमें जो एक नूतन प्राणोन्मेष है, वह मुख्यतः गाँधी और कालेलकर की देन है। पर गुजराती ही क्या अँग्रेजी भाषा पर भी उसकी छाप पड़ रही है। क्या गुजराती में, क्या अंग्रेजी में गाँधी की लेखन-शैली एक उच्चकोटि के कलावन्त की शैली है। एक शब्द भी व्यर्थ नहीं; नपे-तुले शब्द, अपने-अपने स्थान पर ठीक। आडम्बर नहीं, शृंगार नहीं। फिर भी इस सादगी में शैली का अद्भुत सौन्दर्य विकीर्ण करता है। कभी-कभी छोटे-छोटे वाक्यों में वह असीम भाव-सौन्दर्य भर देता है। गो पर, विधवा पर, भारतीय नारी पर, लिखे हुए उसके वाक्य उच्च श्रेणी के गद्य काव्य-जैसे लगते हैं। "गाय दया की एक कविता है।" (काऊ इज़ दि पोएम ऑव् पिटी) इस छोटे वाक्य में इस प्राणी के जीवन को उसने थोड़े में कह डाला है और इस कहने में कितना भावोद्रेक, कितनी कला है! इसी प्रकार "घृणा सदैव घातक होती है, प्रेम कभी नहीं मरता" या "संख्या बल आलसियों या कायरों का आनन्द है। आत्मवीर अकेले लड़ने में आनन्द पाता है" या "विवाह वह बाड़ है जो धर्म की रक्षा करती है" या "प्रेम बोलता नहीं; जो बोले वह प्रेम नहीं।"

उनकी लिखी पुस्तकें, उनके लिखे लेख और "नवजीवन" तथा "यंग इण्डिया" आदि में उनकी कलम से निकली अजस्र विचारधारा से

भाषा पर उनके अधिकार का पता चलता है। अनेक अंग्रेज यात्रियों, एवं लेखकों ने उनकी अंग्रेजी की प्रशंसा की है। बात यह है कि उनकी विचारशक्ति बहुत सूक्ष्म और तीव्र है, इसलिए भाषा अपने-आप उनके दिव्य विचारों का अनुकरण करती है।

पर जब हम उन्हें कलाकार कहते हैं तब हमारा यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने कोई सुन्दर चित्र बनाया है, या कविता लिखी है या सुन्दर गायक या वादक हैं। जब उन्हें कलाकार कहते हैं तो हम कला को उसके अत्यन्त विकसित रूप में लेते हैं। उनका सारा जीवन ही श्रेष्ठ कला का नमूना है।

एक सदेह काव्य

वह एक सदेह काव्य है। उसकी आत्मा सतत् झंकृत वीणा है जिससे आत्मसमर्पण की रागिनी निकलती है और जो उसके कभी न रुकने वाले कर्ममय जीवन के मृदंग पर उछल-उछल कर जगत् को उत्साहित करती है। गांधी एक श्रेष्ठ कर्मकलाविद् ('आर्टिस्ट इन ऐक्शन') हैं। वह कहता है—"भूखा जनसमूह केवल एक कविता चाहता है—प्राणदायक भोजन।" उसने काव्य को क्रियात्मक मानवीय करुणा से ओतप्रोत कर दिया है। और चूंकि उसके हृदय से सदा करुणा की अमृत-निर्झरिणी वह रही है इसलिए उसके कार्यों में काव्य का सौष्ठव हम देखते हैं। दांड़ी-यात्रा की योजना सिवाय गांधी के दूसरा न बना सकता था। इस योजना पर एक श्रेष्ठ कलाकार की छाप है। एक कवि के अतिरिक्त कौन इसे कर सकता था?

गांधी 'कला-कला के लिए' सिद्धान्त का समर्थक नहीं, वह वर्डसवर्थ की भाँति कला की नैतिक कीमत का पूजक है। वह कला को नैतिक प्रेरणा, नैतिक शक्तियों का विकासक मानता है। उसके मत से सब प्रकार की कला आत्मा की—मनुष्य की आन्तरिक दिव्यता को प्रकट करती है और इस प्रकार आत्मानुभव में सहायक होती है।

प्रकृति-सौन्दर्य का पुजारी

वर्डसवर्थ की भाँति ही गांधी भी प्रकृति में अत्यन्त रमणीयता—अनन्त सौन्दर्य

देखता है। प्रकृति के इस अनन्त सौन्दर्य से नहा कर उसकी मानसिक क्लान्ति दूर हो जाती है और आत्मा का तेज शरच्चन्द्र की निर्मलता के साथ प्रकट होता है। वह स्वयं कहता है—"जब मैं सूर्यास्त की सुषमा या चन्द्रमा के सौन्दर्य को देखता हूँ तब मेरा अन्तःकरण प्रभु की पूजा में फैल जाता है।" वह उस श्रेणी का कवि है जो एक हँसती कली देखकर मुग्ध हो जाता है और उसमें भगवान् की मुसकराहट को प्रत्यक्ष देखता है। एक दिन रात को जब मीरा बहिन (मिस मेडलिन स्लेड) धुनकी के काम में लाने के लिए बबूल की पत्तियों का एक गुच्छा तोड़ कर लाईं तो गांधी ने देखा कि प्रत्येक पत्ती सिमटी हुई गहरी नींद में पड़ी है। दुःखभरी हुई आँखों से मीरा बहिन की ओर देख कर कवि बोला—"वृक्ष हमारी ही तरह प्राणी हैं। उनमें जीवन है: वे साँस लेते हैं; वे खाते पीते हैं और हमारी ही तरह उन्हें नींद की जरूरत होती है। इसलिए रात के समय, जब वृक्ष सो रहे हों, पत्तियों को तोड़ना निर्दयता है।......निश्चय ही कल की सभा में मेरा भाषण तुमने सुना होगा जिसमें मैं बेचारे फूलों के बारे में बोला था कि लोग मेरे ऊपर फेंकने या गले में डालने के लिए हल्की-हल्की कोमल कलियों के गुच्छे तोड़ कर लाते हैं, उससे मुझे कितना दुःख होता है। हमें अपने एवं शेष प्राणि-जगत के बीच जीवित सम्बन्ध का अनुभव करना चाहिए।"

× × ×

संगीत का प्रेमी

शुद्ध संगीत का वह अनन्य प्रेमी है और उसने इसे आश्रम की व्यवस्था में स्थान भी दिया है। उसके ही शब्दों में देखें तो उसका कहना है—"संगीत ने मुझे शान्ति दी है।...... संगीत ने मेरे क्रोध पर विजय पाने में सहायता की है। ऐसे अनेक अवसर मैं याद कर सकता हूँ जब एक भजन मेरे अन्तःकरण में पैठ गया है, जब वे ही भाव गद्य में मुझे स्पर्श करने में असफल रहे।" स्व० द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र गायक दिलीप

कुमार राय से एक बार गांधी जी ने कहा था—"मैं संगीत के विरुद्ध हो ही कैसे सकता हूँ? मैं तो संगीत के विना भारत के धार्मिक जीवन के विकास का ख्याल ही नहीं कर सकता। मैं तो संगीत की तरह तमाम कलाओं का प्रेमी हूँ। हाँ, कला के नाम से आजकल अनेक चीजों का परिचय कराया जाता है, उनके खिलाफ जरूर हूँ। कला के लिए हृदय चाहिए; इसका रहस्य समझने के लिए शिक्षा और ज्ञान की जरूरत नहीं।"..........'तपस्या जीवन में सब से बड़ी कला है। जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की भूमिका विना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है? कला के मूल्य का आधार है—जीवन को उन्नत बनाना। जीवन ही कला है। कला जीवन की दासी है। और उसका काम यही है कि वह जीवन की सेवा करे।......कला विश्व के प्रति जागरित होनी चाहिए। कला जीवन के प्रति जाग्रत होनी चाहिए।"

उसके विचार से सत्य में अद्भुत सौन्दर्य समाहित है। और सत्य के द्वारा ही सच्चा सौन्दर्य-दर्शन हो सकता है। सुन्दर में सत्य और शिव खोजने की जगह वह सत्य में ही सुन्दर और शिव खोजता है। इस प्रकार वह एक नैतिक (एवं उपयोगितावादी) कलावन्त है। उसका सारा जीवन आत्म-सौन्दर्य से जाग्रत है और श्रेष्ठ कला का एक सुन्दर प्रतीक है।

—आठ—

दीनबन्धु गाँधी :

गाँधी दीनों की लाठी है। उसने इनकी सेवा में ही अपनी सार्थकता मानी है। वह इनकी सेवा को ईश्वरोपासना का सर्वोत्कृष्ठ रूप मानता है। उसने दरिद्र को नारायण बना दिया है। उसे रात-दिन इस दरिद्र-नारायण का ध्यान रहता है और उसने अपने को उनमें मिला दिया है।

—और इन दीनों ने भी उसे समझा है और हम शिक्षितों से अधिक उसे अपनाया है। वे उसका नाम सुनकर उसी प्रकार चमत्कृत होते हैं जैसे तुलसीदास का नाम सुनकर। उनके लिए वह कोई असाधारण पुरुष है; कोई सन्त-महात्मा है।

—और गाँधी ने निश्चित रूप में भी उनके लिए क्या कुछ कम किया है? अछूतों के लिए प्राण देने वाला यह महापुरुष उनको खूब समझता है और उनकी हित-चिन्ता में उसने ब्रिटिश साम्राज्य की दृढ़ दीवारों को हिला दिया है। इसी प्रकार भारत की गरीबी की मूर्ति-से, चारों ओर से दुरदुराये हुए, हमारे अभागे किसान को उसने धनियों का अन्नदाता कहकर घोषित किया। उनके पल्ले दो पैसे पड़ें, इसलिए उसने भारत के गांवों में चर्खा ला खड़ा किया है और उसकी मन्द रागिनी से उनमें आत्मविश्वास का अद्‌भुत बल पैदा कर रहा है। यह चर्खा, 'जो भारतीय उद्योग का प्रतिबिम्ब है, धीरे-धीरे उनके जीवन में स्थान पा रहा है। शहरातियों में से भी बहुतों को उसने सादगी और पवित्रता प्रदान की है।

यात्रा में, जेल में, सर्वत्र 'भारत के लिए विष्णु रूप' यह चर्खा उपस्थित है। चर्खे के पीछे वह पागल है क्योंकि इसमें वह भारतीय

किसान का उद्धार देखता है । उसे खादी में भारत की स्वतंत्रता के, भारतीय नारी की शक्ति के, स्वराज्य और सतयुग की स्थापना के दर्शन होते हैं । यह वात सुनकर कोई सोचने लगता है, कोई हँसता है, कोई विमूढ़ हो उसकी ओर ताकता है ।

यह चर्खा न केवल भारतीय किसान का सहारा है वरं पश्चिम की यांत्रिक औद्योगिकता के प्रति विद्रोह का प्रतीक है । वह उद्योग एवं जीवन में सादगी लाता है जिसे हम ग्रहण कर लें तो यांत्रिक उद्योगवाद से उत्पन्न श्रेणी युद्ध (पूँजीपति और मजूर के झगड़े) से वच सकते हैं । इस दृष्टि से देखें तो चर्खे का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी कुछ कम नहीं है और जव गाँधी ने कहा था कि अमेरिका के प्रति भी यह चर्खा ही हमारा संदेश है तो उनका ध्यान इसी वात पर था । यह चर्खा पश्चिम की औद्योगिकता से उत्पन्न होड़ और कलह के वीच शांति की संदेशवाहक पताका की भाँति खड़ा है ।

इन रूपों के अतिरिक्त देशभक्त, विद्रोही, श्रमिक अनेक रूपों में हम गाँधी को देखते हैं पर इन रूपों से जनता इतनी जानकारी रखती है कि उनके वर्णन एवं विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं । वह मनुष्यों का प्रेमी है । उसकी विनोद वृत्ति 'सेंस ऑव् ह्यूमर' और उसका मुक्त हास्य सार्वजनिक क्षेत्र में अफवाह की भाँति प्रसिद्ध है । इस विनोद वृत्ति के कारण ही वह इतनी कठिनाइयों और दुःखों के वीच भी जीवित रह सका है । इस विनोद वृत्ति में विरोधी के विरोध का विष वह जाता है और इस साधक को वच्चे की भाँति निर्दोष कर जाता है । जव उसके हृदय में आँधी चल रही हो तव वह हँस सकता है । जो कोई उसके सामने आता है, उसे वह प्रेम की शक्ति से अपना लेता है । उसने प्रेम को एक कला वना दिया है । शिष्टाचार इस कला का सवसे उपयोगी एवं आवश्यक अंग है ।

इस प्रकार अपने विविध रूपों में प्रकट होकर मोह-निशा में ज्ञान के प्रकाश-स्तम्भ की भाँति वह हमें मार्ग दिखला रहा है ।

—नव—

कतिपय स्मरणीय प्रसंग :

गांधी का जीवन उसके विशेष गुणों को व्यक्त करने वाले प्रसंगों से भरा पड़ा है। जो व्यक्ति प्रतिक्षण अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलने में सचेष्ट हैं उसके जीवन में ऐसे प्रसंगों की कमी क्या ? वे सब लोग, जो उनके सम्पर्क में आये हैं, दो-चार उदाहरण अवश्य बता सकेंगे। यहाँ कतिपय स्मरणीय प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है।

द० अफ्रीका का गांधी जी का जीवन एक तेजी से बन रहे साधक का जीवन है। उस साधना में अद्‌भुत भावावेश भी था। और यह

"शीश चढ़ा चुका हूँ !"

उनके पवित्र भावावेश तथा साधना का ही परिणाम था कि उस समय सब धर्मों, जातियों एवं देशों के ईमानदार साथी उन्हें मिले थे। यह उनके सत्याग्रह का ही प्रभाव था कि कई युरोपियन ईसाई-बन्धुओं ने भी भारतीयों का साथ दिया और यातनाएँ सहन की थीं। इस सत्याग्रह ने प्रवासी भारतीय स्त्रियों में भी त्याग की लौ जलाई थी। उन्होंने अपने कष्टों को उदाहरणीय धीरता के साथ सहन किया था। पर गांधी जी तो उनके दुःखों के कारण भी अपने को ही समझते थे और उनके कष्टों को अपनी आत्मिक सहानुभूति से दूर करते थे। २२ दिसम्बर सन् १३ का दिन द० अफ्रीका के सत्याग्रह में महत्वपूर्ण था। डरबन में पार्सी रुस्तम जी का मकान भारतीयों से भर गया था। सैकड़ों सत्याग्रही अपने स्त्री-बच्चों-सहित बैठे थे। उनमें से वे लोग भी थे जिन्हें गोलियाँ लगी थीं। शहीदों की विधवा स्त्रियां अपने बच्चों को गोद में लिये हुए बैठी थीं। संध्या समय, लगभग चार बजे, गांधी जी वहाँ आये। दो ही दिन पहिले वे जेल से छूट कर आये थे। वह उस तरफ गये

जहाँ परलोकगत सुजाई और सेलवनी (ये सत्याग्रह युद्ध में गोली से शहीद हुए थे) की विधवाएँ बैठी थीं। गाँधी जी को देख उन्होंने आँखों में आँसू भर कर उनके चरणों पर सिर रख दिया। गाँधी जी ने बड़ी कठिनाई से सिर हटाया और एक विधवा बहिन के कन्धे पर हाथ रख कर एक टक उसकी ओर देखने लगे। विधवा की आँखें भरी हुई थीं और गाँधी जी के हृदय में भी व्यथा-राशि उमड़ रही थी। गाँधी जी को ऐसा मालूम हो रहा था, मानों भारतमाता ही उस विधवा बहिन के दीन वेश में सामने खड़ी है। ये बहिनें तमिल थीं। अतः इन्होंने एक तमिल दुभाषिये को बुलाकर इन बहिनों से कहा—

"माता, तुम चुप रहो, रोओ मत। तुम्हारा रोना सुन कर मुझसे रहा नहीं जाता। तुम्हारा पति अत्याचारियों के हाथ मारा गया है। आज वह भगवान् की गोद में बैठा हुआ है। उसने देश के लिए अपना शरीर दिया। वह अमर हो गया। वह यदि किसी रोग से मरा होता तो मैं आज इस तरह तुम्हारे सामने खड़ा न होता। संसार को उसकी मृत्यु की खबर भी न होती। यह उसके लिए बड़े भाग्य की बात है कि उसको इस अच्छे काम से मौत मिली। जिस दिन तुम्हारी तरह हज़ारों माताएँ और बहिनें विधवा बनेंगी उसी दिन भारतमाता का उद्धार होगा। मैं अपना सिर भारतमाता के चरणों पर चढ़ा चुका हूँ। अगर ज़ुल्मी सरकार उसे धड़ से अलग कर दे और तुम्हारी तरह मेरी स्त्री भी निराश्रित विधवा हो जाय, तो मैं समझूँगा कि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। तभी मेरी अन्तरात्मा को शान्ति मिलेगी। माता, तुम दुःखी न हो। मैं अपना सिर तुम्हारे गोद में दे देता हूँ। तुम्हारे विधवा होने का कारण मैं ही हूँ। मुझे क्षमा करो और शान्त होओ।"

इतना कहने के बाद गाँधी जी ने एक बार फिर प्रणाम किया और वहाँ से चले गये। जो लोग वहाँ मौजूद थे, गांधी जी की ये स्नेहपूर्ण बातें सुनकर रोने लगे। बहुतों से दिल हिला देने वाली यह घटना देखी न गई तो वहाँ से चले गये। हमारे अन्य नेताओं में

इतना स्नेह कहाँ दिखाई पड़ता है ?

× × ×

१९०८ में जब द० अफ्रीका में कई पठानों ने गलतफहमी के कारण इतना मारा कि वे मरणासन्न हो गये तब भी भय इनके पास फटक नहीं सका था। उस समय पादरी डोक और उनकी पत्नी ने रात-दिन सेवा करके इनकी जान बचाई थी। पर अच्छे होने के बाद भी कई अदूरदर्शी लोग उनको मारने की ताक में रहते थे। महात्मा जी के साथ रहने वाले कई मनुष्यों को यह बात मालूम थी और वे इन्हें सदा सचेत किया करते थे। जब जब यह बात उनके कानों में पड़ती तो वे सिर हिलाकर हँस देते। जब अक्सर यह बात सामने आने लगी तो एक दिन बोले—"ऐसा क्यों न हो ? उनका भी तो इस शरीर पर अधिकार है ? अगर मुझे अपने देश-बन्धुओं के सामने जाते डर लगे तो मुझे उसी क्षण नेतृत्व को नमस्कार करना चाहिए। जिन लोगों की सेवा करने का मैं दम भरता हूँ, यदि डर के मारे उनसे दूर भागूँ तो मुझसा डरपोक और कौन होगा ? देशबन्धुओं के हाथ से मार खाना जिनके भाग्य में बदा हो वही सच्चा पुण्यात्मा है। इसके सिवा उनकी समझ में मेरी देश-सेवा में कोई भूल होगी तभी वे मुझे दण्ड देना चाहते हैं। इसमें उनकी नेकनीयती ही है फिर भला मैं उन्हें कैसे दोष दे सकता हूँ ?"

अभय

वस्तुतः शरीर के सम्बन्ध में जरा भी भय करना गाँधी जी को नास्तिकता प्रतीत होती है। जिसने अपना जीवन जन-सेवा में अर्पित कर दिया है और जो प्रभु की शरण में जा चुका है उसे मृत्यु का भय क्या ? वह मरे तो, जिये तो, उसका शरीर प्रभु का संदेशवाहक है। वह तो हथेली पर सिर रख कर घूमता है। गाँधी जी की निर्भयता और अहिंसा का एक और उदाहरण लीजिए:—

गाँधी जी के एकमात्र मित्र एवं सहयोगी श्री केलेनबैक थे। यह जर्मन थे और द० अफ्रीका में एक प्रसिद्ध इञ्जिनियर थे। गाँधी जी के

साथ रह कर उनका जीवन भी बदल गया था। वह भी साधु प्रकृति के हो गये थे। वह प्रायः गांधी जी के साथ रहते थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि कुछ लोग गांधी जी को मारने की ताक में हैं तो वह सदा परछाईं की तरह गांधी जी के साथ रहने लगे। कुछ दिन बाद गांधी जी को उनपर सन्देह हुआ और उन्होंने अनुमान से सब बातें जान लीं। एक दिन उन्होंने केलेनबैक की जेब में हाथ डाला तो उन्हें एक तमंचा मिला। उन्होंने कड़क कर पूछा—"हैं! क्या महात्मा टाल्सटाय के शिष्य भी शस्त्र साथ रखते हैं?"

केलेनबैक ने धीरे से कहा—"ज़रूरत होने पर रखना ही पड़ता है।"

गांधी जी ने और कड़क कर पूछा—"तमंचा साथ रखने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी है?" केलेनबैक ने कुछ घबराहट के साथ उत्तर दिया—"मुझे समाचार मिला है कि कुछ लोग आप पर आक्रमण करने वाले हैं। इसीलिए मैं तमंचा रखता हूँ।"

गांधी जी ने कहा—"मेरी रक्षा की जिम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ले रखी है? क्या इस तमंचे से तुम मेरी रक्षा करोगे?"

केलेनबैक चुप रहे। गांधी जी बोले—"और यदि इस तमंचे से ही मेरी रक्षा होती हो तो मैं अभी इसीसे इस शरीर के दो टुकड़े कर डालता हूँ तब तुम क्या करोगे? मेरे मित्र, यदि तुम सच्चे स्नेही होते तो इस शरीर पर तुम्हारा इतना मोह होना सम्भव ही न था। स्नेह केवल शरीर की ही रक्षा नहीं करता; आत्मा की भी रक्षा करता है। शरीर आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायगा। स्नेह के लिए ऐसी क्षणभंगुर वस्तु पर आसक्ति रखना अनुचित है। उसे अमरत्व की अभिलाषा रखनी चाहिए। यदि तुम मेरे सच्चे मित्र हो तो तमंचे से मेरी रक्षा करने का विचार छोड़कर इसे फेंक दो।"

उस दिन से केलेनबैक ने तमंचे को छुआ तक नहीं। सत्याग्रह की अन्तिम लड़ाई में गांधी जी डरबन से जोहांसबर्ग जाने वाले

थे तब यह बात मालूम हुई कि कुछ लोगों ने मार्ग में उनकी हत्या करने का षड़यन्त्र रचा है। एक सत्याग्रही ने सब बातें गांधी जी से कहीं और प्रार्थना की कि जोहांसवर्ग न होकर बाहर बाहर नेटाल जायँ।

और उदाहरण

इस पर गांधी जी ने कहा—"यदि मरने के भय से जोहांसवर्ग न जाऊँ तो मैं सचमुच जीवित रहने के योग्य नहीं। मैं वहां जाऊँ और मारने वालों की योजना सफल हो जाय तो मुझे सन्तोष होगा। शायद ईश्वर की यही इच्छा हो कि मैं अपना काम पूरा कर चुका और अब बुला लिया जाऊँ।"

केलेनबैक इस अवसर पर जोहांसवर्ग में ही थे। उन्होंने यह बात सुनी तो इस आदमी से, जिसने उन्हें यह बात सुनाई थी, कहा—"हम लोगों की अपेक्षा गांधी जी ज्यादा अच्छी तरह अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं। और उनसे भी ज्यादा ईश्वर उनकी रक्षा करता है।"

गांधी जी जोहांसवर्ग गये। वहां लोगों ने उनका खूब स्वागत किया। १९०७ में जिन चार पठानों ने उन पर आक्रमण किया था उनमें से एक—जिसका नाम मीर था—वहां उपस्थित था। उसे जब इस षड़यन्त्र का पता लगा तो उसने गांधी जी की रक्षा की जिम्मेदारी ली और उनके पहुँचते ही उनके चरणों पर लोटने लगा!

अभय और आत्मबल की यह महिमा है! इनसे क्या नहीं हो सकता?

× × ×

'बा' (गांधी जी की धर्मपत्नी) सदा बीमार रहती थीं। कई पुस्तकों के अध्ययन से गांधी जी का ख्याल हो गया था कि नमक से रक्त-शोधन नहीं होता, वरन् वह उल्टे पतला हो जाता है। एक दिन उन्होंने पत्नी से कहा—"तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। अगर तुम नमक छोड़ दो तो

करके दिखाओ!

बहुत जल्द तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जाय।"

कस्तूर बाई बोलीं—"नमक न खाने से कैसे काम चलेगा। उसके बिना अन्न कैसे पेट में जायगा?"

गांधी जी ने पूछा—"पर नमक न खाया जाय तो क्या हो?"

कस्तूर बाई—"एक बार आप ही उसे छोड़ देखिए, तब आप समझ जायँगे।"

गांधी जी—"तो लो, तुम्हारे साथ मैं भी इसी समय नमक खाना छोड़ता हूँ।" उस दिन से गांधी जी ने नमक खाना छोड़ दिया।

× × ×

बाल-हठ पर विजय

एक बार गांधी जी के सब से छोटे लड़के देवदास ने अलोना भोजन करने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल गई। इसके दो-तीन दिन बाद की बात है; कस्तूर बा सबको नियमानुसार भोजन परोस रही थीं। बढ़िया नमकीन तरकारी देखकर देवदास के मुख में पानी भर आया। पर व्रत-भंग होगा इसलिए तरकारी उसे नहीं दी गई। तब उसने कोई अलोनी चीज खाने को नहीं ली और रोने लगा। गाँधी जी ने भी भोजन नहीं किया और प्रतिज्ञा की कि 'जब देवदास मुझसे कहेगा कि पिता जी, मैं भोजन करता हूँ, आप भी कीजिए; तभी मैं करूँगा।' बात अड़ गई। एक ओर बाल-हठ; दूसरी ओर आत्मबल। उस समय संगी-साथियों ने बहुत समझाया पर देवदास अड़ गया। पर सन्ध्या होते-होते उसे अपने कार्य के अनौचित्य का बोध हुआ। वह अपने पिता के पास पहुँचा और नम्रतापूर्वक बोला—"पिता जी, मैं अलोना ही भोजन करूँगा; आप भी कीजिए।" तब पिता पुत्र ने साथ बैठकर भोजन किया।

व्रत और प्रतिज्ञा का निर्वाह कठिनाइयों एवं प्रलोभनों की परवाह न करके करना ही चाहिए, यह शिक्षा इस प्रसंग से मिलती है।

× × ×

आत्मशोध और आत्मसुधार गांधी जी की साधना के मुख्य उद्देश्य रहे हैं। इन वातों पर उन्होंने सदा ध्यान रखा। यदि उनके साथियों या सहयोगियों से कोई गलती हो जाती है तो उसे वह अपनी ही कमजोरी समझते हैं और कहते हैं कि 'मुझमें इतना असत्य भरा है इसीलिए मेरे साथी मेरे असत्य को ग्रहण कर लेते हैं। निष्पाप मनुष्य के सामने पापी ठहर नहीं सकता।' द० अफ्रिका के फीनिक्स-आश्रम की बात है। एक बार एक लड़के ने जानबूझ कर एक गलती की। गांधी जी को दुःख हुआ। उन्होंने पन्द्रह दिन का उपवास करने की घोषणा की। इस समय कस्तूरबा बहुत बीमार थीं; हड्डियां दिखाई देने लगी थीं। गांधी जी की प्रतिज्ञा से लोगों को शंका होने लगी कि ऐसी अवस्था में शायद ही कस्तूर बा बच सकें। क्योंकि वह कैसे अन्न ग्रहण करेंगी। स्वयं गांधी जी को भी यह शंका थी। शाम को प्रार्थना के समय लोग इकट्ठे हुए और अपनी आशंका प्रकट की। उस समय का प्रभावशाली वर्णन एक आश्रमवासी ने अपनी डायरी में यों लिखा है ;

प्रतिज्ञा-पालन

"पू० बापू जी ने अपनी प्रतिज्ञा पालन करने का निश्चय किया। मैंने कहा—"बापू जी, यदि आज से ही उपवास न आरम्भ करके आप कुछ दिन पीछे इसे आरम्भ करें तो क्या कोई हर्ज हो? मेरी प्रार्थना है कि आप ऐसा ही करें।"

वह बोले—"तुम जो कहते हो वह ठीक है। उसकी (कस्तूर बा की) तबियत ठीक नहीं है। उसका हृदय बड़ा कोमल है। मैं १५ दिन तक उपवास करूँगा, यह सुनकर उसे बड़ा दुःख होगा और कदाचित् इससे उसका प्राणान्त भी हो जाय। परन्तु मैं इससे क्यों डरूँ? हमें इस बात का भी मोह नहीं है कि वह जीती ही रहे। जैसी ईश्वर की इच्छा होगी वैसा होगा। उसी में उसका कल्याण है। दूसरी बातों पर विचार करना मेरा कर्तव्य नहीं है। मोहासक्ति छोड़कर अपने धर्म का पालन करना ही मेरा कर्तव्य है। फिर इस देह का भरोसा

ही क्या ? यदि दो दिन बाद उस पर मृत्यु का अधिकार हो गया तो क्या मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ ही नष्ट नहीं होगी ? प्रतिज्ञा-पालन करते हुए मरना धर्म है। प्रतिज्ञा पालने के पहिले ही यदि मृत्यु हो जाय तो जीव की अधोगति ही होगी। इसलिए की हुई प्रतिज्ञा तत्काल पालन करनी चाहिए। यह सब समझकर भी यदि मैं उपवास करना कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दूँ तो यह मेरी दुर्बलता ही कही जायेगी। ये सब बातें उसे (कस्तूर बा को] समझाई जा सकें तो अच्छा ही है।”

“यह उत्तर सुन लोग चुप रह गये। बापू ने फिर कहना आरम्भ किया—‘आप सब लोगों में यह इच्छा होनी चाहिए कि प्रतिज्ञा-पालन करने पर भी मेरी शक्ति बनी रहे। ऐसा होने का एक उपाय है। यदि आप लोग मेरी प्रतिज्ञा भंग कराने का हठ करेंगे तो उससे मेरे बल का ह्रास होगा। मैं अपनी प्रतिज्ञा तो भंग करूँगा ही नहीं पर आप लोगों का दुराग्रह देखकर मेरे हृदय में असह्य वेदना होगी। यदि आप लोग भी मेरी ही तरह उपवास करने लगें तो आपका उपवास निरर्थक और तामसी होगा। उसका मुझ पर कुछ भी असर न होगा और आप लोगों को भी उससे लाभ होने की कोई सम्भावना नहीं। उलटा अकल्याण ही होगा क्योंकि छापाखाना, पाठशाला और खेती-बाड़ी के काम बन्द रहेंगे और इससे अधर्म होगा। इसलिए मेरी रक्षा करने का एक ही उपाय है। वह यह कि आनन्द और उत्साह के साथ अपना काम करते रहिए, उनमें जरा भी फर्क न आने दीजिए। इससे मुझे आनन्द होगा और मुझे मालूम ही न पड़ेगा कि मैं उपवास कर रहा हूँ। आप के हँसते चेहरे और उत्साह देखकर मेरे पन्द्रह दिन बात की बात में बीत जायेंगे।”

तदनुसार ही कार्य हुआ। सोलहवें दिन गाँधी जी ने पारण किया। पहिले ‘वैष्णवजन’ भजन गाया गया। बाद में एक नारंगी और पपीते के रस में थोड़ा नीबू का रस निचोड़ कर मिलाया गया। इसी के एक-दो चम्मच उन्होंने पिये।

इस उपवास के समय गाँधी जी ने अपने और अपने साथियों के कार्यों एवं प्रवृत्तियों पर खूब विचार किया। इसका वर्णन भी उक्त आश्रमवासी की डायरी से नीचे दिया जाता है। इससे मालूम होगा कि वह प्रत्येक कार्य का कितना सूक्ष्म विचार करते थे और कितने जागरूक रहते थे। एक-एक क्षण अपने सिद्धान्तों की रक्षा में बिताते थे और बार-बार आत्म-निरीक्षण करके तथा दूसरे साथियों की प्रवृत्तियों पर ध्यान देकर देखते रहते थे कि हम किधर जा रहे हैं।

वैशाख कृ० १४ शनिवार सं० १६७०

'आज बापू का उपवास समाप्त हुए सात दिन हो गये। उन्हें बड़ा ही क्लेश हुआ, वह मृत-प्राय से हो गये थे। इस उपवास में उन्होंने बहुत अधिक विचार किया। अपने मार्ग और वर्तमान रहन-सहन में वे दृढ़ हो गये। अब उन्हें शरीर की सजधज नरक सी जान पड़ती है।

सधाना और तपस्या की निष्ठुरता

सजावट के दृश्य उन्हें मजाक जान पड़ते हैं। भोग-विलास की सामग्री देख उन्हें कय आने लगती है। यह सब उनके कल के कार्य से प्रकट हुआ है। परसों पूज्य…आये। बापू जी ने देखा कि उनकी जीभ उनके वश में नहीं है। और उनका भोजन व्यय-साध्य हो गया है। बापू जी ने ये तथा अन्य बातें उनसे कहीं। वह उन पर बहुत नाराज हुए। कल सन्ध्या की प्रार्थना के समय उन्होंने सबको सुनाते हुए कहा—"आज मुझ पर चोट पर चोट पहुँचाई जा रही है। पिछले २४ घण्टे में ऐसी अनेक बातें हुई हैं जिनसे मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। दिन भर मेरा मन संतप्त रहा है। किसी की बात मुझे अच्छी नहीं लगती। कल रात को मैंने……बड़ा धिक्कारा। मैं इतने जोर से बिगड़ा कि वे छोटे बालक की तरह रोने लगे। मैंने उनसे कह दिया कि यदि इसी तरह काम करना हो तो मेरे पास से दूर हो जाओ। मुझसे ऐसा स्नेह मत रक्खो। तुम्हारी विलासिता की रहन-सहन मुझसे सही नहीं जायगी। मेरे पास रहना तो तलवार की धार पर चलना

है।"......आज सवेरे......को भी मेरे निकट रोना पड़ा। इन बातों से आपको अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि (इस समय) मैं बड़ा ही कठोर बना हुआ हूँ। पर यह सब आप लोगों के लिए ही है। फीनिक्स में जीवन बिताना अब बड़ा कठिन है। इसलिए छोटे-बड़े सब लोगों से मेरा कहना है कि आप लोग सब बातों को सोच समझकर और ध्यान में रखकर यहाँ रहिए। श्री गोखले, एण्डरूज, पियर्सन आदि बड़े-बड़े लोगों ने इस आश्रम की प्रशंसा की है। इसका कारण यहाँ की शिक्षा ही है। आप लोगों के गीता के श्लोक मात्र पाठ कर लेने से मुझे सन्तोष न होगा। इन बातों की मुझे कुछ चिन्ता नहीं कि आप लोग इतिहास पढ़ते हैं या नहीं; अंक लिखते हैं या नहीं; संस्कृत का अध्ययन करते हैं या नहीं। परन्तु आप लोगों के लिए संयम की वृत्ति धारण करना आवश्यक है। मुझे इसी की आवश्यकता है। मैं एक बार मनुष्य का गुलाम होना स्वीकार कर लूँगा किन्तु अपने मन का गुलाम कदापि न हूँगा। मन की गुलामी के बराबर पाप दूसरा नहीं है। इसलिए आप लोग इन बातों का ध्यान रखिए और मन को वश में रखना सीखिए। तभी आप लोग मेरे पास रह सकेंगे। अन्यथा मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है। मैं आप लोगों का गुरु बनने का अभिमान नहीं करता। मेरे पास एक शिष्य है। उस एक ही शिष्य को शिक्षा देना बड़ा कठिन है पर उसको शिक्षित कर लेने से मैं आपका, भारत का, और सम्पूर्ण मानव-जाति का कल्याण कर सकूँगा। वह शिष्य मैं स्वयं ही हूँ। इस तरह यदि आप सब लोग आप ही अपने शिष्य बनें या बनने के लिए हृदय से प्रयत्न करें तभी आप लोग यहाँ रहने के अधिकारी हो सकते हैं। ऐसी रहन-सहन जिसको पसन्द न आती हो उसका यहाँ न रहना ही अच्छा है। इसी में उसकी भलाई है। परन्तु जीवन का यथार्थ रहस्य न समझते हुए निर्जीव यंत्र की तरह उम्र बिताने को मैं पाप समझता हूँ। और मैं नहीं चाहता कि आप लोगों के द्वारा इस प्रकार का पाप हो।"

× × ×

परिश्रम और सेवा

जीवन-कथा में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि १६१० ई० में ट्रांसवाल सरकार ने वहाँ के बहुत से भारतीय सत्याग्रहियों को निर्वासित किया। वे भारत लाकर छोड़ दिये गये। इनका जन्म अफ्रिका में ही हुआ था और भारत में उनका कोई सगा-सम्बन्धी न था। इसलिए उन्हें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। १०४, ६०, और १२६ के तीन दल भारत लाकर छोड़े गये। पहिले दो मद्रास और तीसरा बम्बई में। पीछे आन्दोलन करने पर इस प्रकार का निर्वासन बन्द हुआ। इनके स्त्री-बच्चे द० अफ्रिका में ही थे पर गाँधी जी पर उनका ऐसा विश्वास था कि उनके सम्बन्ध में वे बिलकुल निश्चिन्त थे। गाँधी जी ने भी स्त्री-बच्चों की सेवा अद्‌भुत लगन से की। ये लोग 'टॉलस्टाय फार्म' में रहते थे। उस समय गाँधी जी का परिश्रम और उनकी सेवा देखने योग्य थी। वे तड़के उठते, उठकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे; फिर अपने ही हाथों स्त्रियों का पाखाना साफ करते थे। इसके बाद वह स्त्रियों के स्थान पर जाकर पूछते—"क्या आप लोगों के पास मैले कपड़े हैं ?" "कृपया औरों के भी मैले कपड़े ला दीजिए मैं उन्हें धो लाऊँ।" सब मैले कपड़े उनके हवाले किये जाते। वह पास के नाले से उन्हें धो लाते और सुखाकर सब के कपड़े दे देते। वह इन लोगों का इतना ध्यान रखते थे कि उन्हें अपने निर्वासित पतियों एवं पिताओं की याद भी बहुत कम आती थी।

गाँधी जी किसी काम को छोटा नहीं समझते। उनके नजदीक प्रत्येक कार्य पवित्र है। अध्यापक और भंगी के काम को वे एक-सा महत्त्व देते हैं। इसलिए किसी भी काम को स्वयं अपने हाथ से करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। अब तो कार्याधिक्य-वश बहुतेरे काम वह दूसरों से भी ले लेते हैं पर पहिले तो साधना की प्रारम्भिक अवस्था में वह इनका ख्याल रखते थे। इस सम्बन्ध में बम्बई की

अवन्तिका बाई गोखले (जो गाँधी जी के सम्पर्क में अनेक बार आई हैं) लिखती है—"लखनऊ की महासभा के समय गाँधी जी से मेरी अनेक बार मुलाकात हुई। उस समय उन्होंने एक बार आश्रम आने का मुझे निमंत्रण दिया। लौटती बार...एक दिन सुबह हम अहमदाबाद पहुँच गये। सामान इत्यादि 'वेटिंग रूम' में रख आश्रम की खोज में चले।...उन दिनों आश्रम पुल के उस पार शहर के बाहर किराये के एक बंगले में था। गाँधी जी ने प्रेमपूर्वक स्वागत किया। मेरे साथ पूना से दो गृहस्थ भी थे। थोड़ी देर बाद हमने विदा माँगी तो बोले—"मैं समझता हूँ कि तुम्हें थोड़े दिन तो रहना चाहिए। अगर रहना न हो सके तो भोजन करके तो जाना चाहिए।' हमसे नहीं न कहा गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा कि नहाने के लिए गरम या कैसा पानी चाहिए? मैंने कहा ठंडे पानी से मेरा काम चल जायगा पर एक गृहस्थ को गरम पानी चाहिए।" इतना सुनते ही गाँधी जी घड़ा लेकर पानी लेने गये। पानी भरकर लाये और आग जलाकर उस पर पानी गरम किया और गृहस्थ को दिया। उस बेचारे के मन में आया कि मैंने कहाँ से गरम पानी के लिए कहा।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सेवा के छोटे से छोटे काम में भी वह उतना ही रस लेते हैं। उन दिनों तो वह सब को खिलाकर तब खाते थे।

× × ×

गाँधी जी द० अफ्रिका से आये ही थे। उनके सम्मान में हीरा-बाग (बम्बई) में एक सभा हुई थी। इस सभा में बहुत लोग आये थे।

लोकमान्य के प्रति सम्मान

इतने में पूनाशाही पगड़ी पहिने और दुपट्टा लगाये एक सज्जन व्यासपीठ की तरफ आते दिखाई दिये। महात्मा गाँधी ने लोकमान्य समझकर साष्टांग नमस्कार किया। लोग आश्चर्यचकित हो गये। वस्तुतः लोकमान्य के प्रति उनके हृदय में बड़ी श्रद्धा थी।

× × ×

राष्ट्रभाषा के प्रचार और अभ्युत्थान में गांधी जी का जितना हाथ है उतना और किसी का नहीं। मद्रास-जैसे प्रान्त में उन्होंने हिन्दी की पताका फहराई है। मद्रासियों से बार-बार उन्होंने हिन्दी सीखने का आग्रह किया। उनके हिन्दी व्याख्यानों को सुनने के लिए सैकड़ों ने हिन्दी सीखी। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के वह अध्यक्ष भी थे।

हिंदी-प्रेम

स्व० लोकमान्य तिलक, आरम्भ में, हिन्दी के प्रेमी न थे; न उनकी तार्किक युक्तियों के आगे कोई उनसे हिन्दी के लिए कहने की हिम्मत करता था। एक बार की बात है कि कलकत्ता की एक बड़ी सभा में देश के अनेक नेता उपस्थित थे। गांधी जी भी मौजूद थे। लोकमान्य का व्याख्यान होने वाला था। लोकमान्य उठे और उन्होंने अंग्रेजी में व्याख्यान दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर गांधी जी उठे और श्रोताओं से बोले—"आप लोगों में से जिस जिस ने लोकमान्य का व्याख्यान समझा हो हाथ उठावे।" बहुत थोड़े आदमियों ने हाथ उठाये। गांधी जी ने फिर कहा—"अब वे लोग हाथ उठावें जिन्होंने व्याख्यान नहीं समझा।" बहुत लोगों ने हाथ उठाये। तब गांधी जी ने हाथ जोड़कर लोकमान्य से कहा—"इसीलिए हिन्दी सीखने की आवश्यकता है। यदि लोकमान्य आज हिन्दी में बोले होते तो हमारे अधिक भाई उनके व्याख्यान से लाभ उठाने से वञ्चित न रह जाते। अंग्रेज को समझाने के लिए हमें अपनी मातृभाषा छोड़कर अंग्रेजी सीखने की ज़रूरत नहीं। अगर उसे हमारी बात समझने की गरज होगी तो वह खुद हिन्दी पढ़ेगा या दुभाषिया रखेगा।" लोग कहते हैं कि लोकमान्य पर इस बात का इतना असर पड़ा कि उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि "मैं दो महीने में हिन्दी सीख लूंगा।"

× × ×

गांधी जी तो किसी के प्रति भी शरीर-बल का प्रयोग करने के

विरुद्ध हैं पर वह इस पर ज्यादा जोर देते हैं कि विद्यार्थियों को कभी दण्ड न देना चाहिए। एक बार की बात है कि कि उन्होंने सब को कोई विशेष काम करने का निषेध किया था फिर भी कुछ ने वह काम किया। अन्त को बात खुल गई। पर भय के कारण कोई पूछने पर भी स्वीकार न करता। यह देख गाँधी जी को बड़ा दुःख हुआ। विद्यार्थियों के सामने ही उन्होंने अपने गाल पर दो तीन तमाचे मारे और कहा—"अवश्य मुझी में कोई दोष होगा, इसी से तुम लोग सच्ची बात कहने से डरते हो।" इसका असर लोगों पर ऐसा पड़ा कि लोगों ने सच्ची बात कह दी।

आत्म-शासन

× × ×

'फीनिक्स' में रहते समय एक दिन सवेरे ६ बजे एक तार आया। डाक (जिसमें तार भी था) राव जी भाई नामक एक सज्जन के हाथ में थी। वह उसे गाँधी जी के पास ले जा रहे थे कि रास्ते में गाँधी जी के द्वितीय पुत्र मणिलाल मिले। उन्होंने तार हाथ में ले लिया। कुछ ही दिन पहिले गाँधी जी के बड़े भाई की हालत खराब होने का समाचार मिला था। इसलिए मणिलाल तार का समाचार जानने को उत्सुक थे। उन्होंने तार खोला और पढ़ कर बन्द कर के उसी तरह चुपचाप रख दिया। उसमें उनके चचा की मृत्यु का ही समाचार था। सारी डाक महात्मा जी के सामने आई। सब लोग समझते थे कि तार पढ़ कर गाँधी जी पाठशाला के बाहर आ जायेंगे पर वैसा कुछ न हुआ। दिन भर सब काम रोज की तरह ही शान्तिपूर्वक हुए। शाम की प्रार्थना समाप्त होने पर उनके चेहरे पर दुःख के चिह्न दिखलाई पड़े। उस समय उन्होंने लोगों से कहा—"नित्य के कामों में रुकावट न पड़े, इसलिए मैंने हृदय का वेग दबा कर सब काम यथाक्रम होने दिया। निश्चित कार्य-क्रम में गड़बड़ करने का मुझको क्या अधिकार है? अतएव मैंने निश्चय किया कि मुझे अपना मन इस प्रकार स्थिर रखना चाहिए जिससे किसी

आत्म-संयम

को जरा भी सन्देह न हो।"

कैसा आत्म-संयम है! और फिर यह घटना तो लगभग ४० वर्ष की पुरानी है। तब से तो वह इस पथ पर बहुत आगे बढ़ गये हैं। अब तो वह स्थितप्रज्ञ की अवस्था के निकट पहुँच गये हैं।

× × ×

गाँधी जी जहाँ कर्तव्य में अत्यन्त निष्ठुर हैं वहाँ अपने सहकारियों के प्रति उनका स्नेह भी अद्भुत होता है। उनके आश्रम-वासियों को तो उनके वात्सल्य का अनुभव सदा ही होता रहा है। उनकी उपस्थिति से रोगी को ऐसा मालूम होता है कि मानों माँ की गोद में बैठे हैं। उनमें स्त्रियोचित गुणों की प्रधानता है इसलिए हिन्दू नारी की नाईं जहाँ उनमें असीम त्याग, कष्ट-सहन और कर्तव्य-पालन का उदाहरण मिलता है, वहाँ उसके स्नेह से भी उनका हृदय भरा है। एक आश्रमवासी ने १९२२ की एक घटना का जिक्र किया है। जिससे उनके अद्भुत वात्सल्य का परिचय मिलता है—

अद्भुत वात्सल्य

"बापू जी के गिरफ़्तार होने के कोई चार मास पहिले एक आश्रमवासी को खेत में झोपड़ी बना कर एकांतवास करने की इच्छा हुई। बापू जी ने उसे समझाया कि ऐसा न करो। पर उसने न माना। अन्त को उन्होंने इजाजत दे दी। पर शर्त रखी—मैं जब चाहूँ तब मिल सकूँ। उस भाई को एकान्त सेवन की इतनी तीव्र इच्छा हो गई थी कि अत्यन्त संकोच के साथ उसने इसे स्वीकार किया। उसने यह भी सोचा कि यह ठहरे बहुधन्धी आदमी, कौन बार-बार मिलने आयेंगे? पर जब तक उस भाई ने उनसे मिलने की छुट्टी रखी तब-तक कभी ऐसा न हुआ कि बापू जी आश्रम में रहे हों और उनसे मिलने न गये हों। चाहे अपना मौन दिन हो, उपवास दिवस हो, कितने ही लोग दूर से आकर बैठे हों, सब बातों को एक ओर रख कर लकड़ी के सहारे अपने इस पुत्र से मिलने के लिए चल देते।

एक वार अनेक कार्यों में लगे रहने के कारण ११-१२ वजे तक वह न जा पाये। न तो स्नान ही कर पाये; न भोजन ही। फिर भी पहिले वहाँ जाकर अपने इस पुत्र से मिले और वाद में आकर भोजन किया। यह जव मिल कर आते तो उन्हें ऐसा आनन्द मालूम होता मानों कोई महान कार्य सफल हुआ हो। प्रार्थना के स्थान पर इस भाई के विषय में सव आश्रमवासियों को समाचार सुनाते। "उसे नींद अच्छी तरह पड़ी थी; उसका चित्त शान्त था।" ऐसी-ऐसी वातें कह कर एक पुत्र-दिवानी माता के वात्सल्य का परिचय देते। यात्रा से लौटते ही पहिले उसके समाचार पूछते। जेल में जो लोग उनसे मिलने के लिए जाते थे उनसे वह उसकी खवर सव से पहिले पूछना न भूलते। महासभा की धूमधाम के समय आप 'खादी नगर' में रहते थे। और इस भाई की इच्छानुसार मिलना वन्द रखा था। तो भी वह उसके हाल-चाल पूछना भूलते न थे। वारडोली में सविनय-भंग की शुरुआत करने के लिए गये थे। अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में जी लगा हुआ था; महासभा समिति की वैठक की गड़वड़ी थी। उन्हें खवर लगी कि उस आश्रमवासी की भाभी कहीं नज़दीक ही हैं। वस, तुरन्त उनके देवर की खवर देने को उत्सुक हो गये। मानों सारा रचनात्मक कार्यक्रम उस भाई के आरोग्य और मानसिक शक्ति पर ही अवलम्वित है, और इस तरह सव वातों को अलग रख कर उसकी भाभी को बुलाया और समाचार सुनाने लगे।"*

जव गांधी-इरविन समझौते की वातें चल रही थीं और गाँधी जी तथा अन्य नेता दिल्ली में डा० अनसारी के यहाँ ठहरे हुए थे तव एक दिन एक अमेरिकन पत्रकार ने गाँधी से पूछा—"क्या आप निकट भविष्य में अमेरिका जायँगे ?"

गाँधी जी ने कहा—"तव तक नहीं जव तक इससे मेरे देश का

---

* 'हिन्दी नवजीवन' (जयन्ती अंक) से।

कोई विशेष हित न हो।"

पत्रकार फिर अपने अमेरिकन शाही ढंग पर बोला—"यदि १० लाख डालर (लगभग ३० लाख रुपये) की सहायता मिले तो भी नहीं?"

गाँधी जी ने बिना उत्तेजना के शान्ति-पूर्वक उत्तर दिया—"नहीं!" यह सुन कर उस अमेरिकन की आँखें कपार पर चढ़ गईं। बेचारे को क्या मालूम था कि जिस दुबले पतले व्यक्ति से वह बात कर रहा है उसके लिए, उसकी आध्यात्मिक साधना के सामने, ३० लाख रुपये क्या, समस्त पृथ्वी का वैभव तुच्छ है।

ये तो थोड़े प्रसंग हैं; वैसे उनके जीवन का प्रत्येक दिवस स्मरणीय प्रसंगों से भरा हुआ है। इन प्रसंगों में उनका रूप रह-रह कर हमारे सामने प्रकाशित हो उठता है।

जीवन-तालिका

१८६९	२ अक्तूबर	गाँधी जी का जन्म (पोरबन्दर में)। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर तथा एक मामूली पाठशाला में हुई।
१८७६	...	पिता एवं परिवार के साथ राजकोट आये। वहाँ एक वर्नाक्यूलर स्कूल में भरती।
१८७९	...	काठियावाड़ हाई स्कूल में प्रवेश।
१८८३	...	विवाह
१८८५	...	पिता का शरीरान्त।
१८८६	...	मैट्रिक परीक्षा में पास हुए।
१८८७	...	भाव नगर के श्यामलदास कालेज में प्रवेश।
१८८८	४ सितम्बर	वैरिस्टरी की शिक्षा के लिए इंग्लैंड-यात्रा।
१८९१	१० जून	वैरिस्टरी की परीक्षा पास की।
	१२ जून	वैरिस्टर हो कर भारत लौटे।
१८९३	अप्रैल	दक्षिण-अफ्रीका की यात्रा।
१८९४	मई	'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना।
१८९६	...	भारत लौटे।
	...	फिर दक्षिण-अफ्रीका की यात्रा।

१८९७-९९	...	अंग्रेज बोअर युद्ध; उसमें सेवा-शुश्रूषा।
१९०१	...	भारत-आगमन।
१९०२	...	दक्षिण-अफ्रीका को रवाना हुए।
१९०३	...	श्री चेम्बरलेन को अरजी (मेमोरियल) दी। 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन असोसिएशन' स्थापित किया।
	...	'इण्डियन ओपीनियन' निकाला।
१९०४	...	जोहांसबर्ग में प्लेग फैला; उसमें बड़ी सेवा की।
१९०५	२२ नवम्बर	लार्ड सेलबर्न के पास डेपुटेशन ले गये।
१९०६	...	नेटाल में 'जुलू'-विद्रोह के समय घायलों को ढोने और शुश्रूषा का काम लिया।
१९०७	१ अगस्त	'एण्टी एशियाटिक ला' के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन करने की प्रतिज्ञा की।
१९०७	२६ दिसम्बर	प्रवास कानून (एमीग्रेशन ऐक्ट) पर सम्राट की स्वीकृति।
	...	जोहांसबर्ग में एमीग्रेशन कानून के विरुद्ध सभा की और भाषण दिया। गिरफ्तारी।
१९०८	फरवरी	जेल में जेनरल स्मट्स से समझौता। रिहाई; स्वेच्छापूर्वक परवाने लेने का समर्थन। पठानों-द्वारा पीटे गये।
	...	लन्दन गये।
१९१२	...	गोखले को दक्षिण-अफ्रीका बुलाया।
१९१३	सितम्बर	३ पौंड का टैक्स; सत्याग्रह-आन्दोलन का पुनरारम्भ।
	...	स्मट्स-गाँधी समझौता।
१९१४	जनवरी	दक्षिण-अफ्रीका की सरकार से संधि।

	३० जून	सत्याग्रह का अन्त।
	जुलाई	'इंडियन रिलीफ ऐक्ट' पास हुआ।
	६ अगस्त	गोखले से मिलने लन्दन पहुँचे। वहाँ महायुद्ध में ब्रिटेन की सहायतार्थ 'भारतीय स्वयंसेवक' दल का संगठन किया।
१६१५	जनवरी	भारत लौटे। सरकार ने 'कैसरे हिन्द' पदक प्रदान किया।
	२५ मई	अहमदाबाद (कोचरब) में सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया।
१६१६	४ फरवरी	हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय व्याख्यान। उसमें उपस्थित राजाओं को उनकी वेश-भूषा और विलासिता के लिए फटकारा।
१६१७	अप्रैल	चम्पारन में गिरफ़्तारी।
	...	कांग्रेस-लीग योजना का समर्थन।
	१७ सितम्बर	'बम्बे कोआपरेटिव कान्फ्रेंस' की अध्यक्षता।
	३ नवम्बर	गुजरात राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता।
१६१८	...	अहमदाबाद मिल-मजूरों की हड़ताल; उस सम्बन्ध में उपवास और उसका सफल अन्त।
	अप्रैल	दिल्ली युद्ध-सम्मेलन में उपस्थिति।
१६१६	फरवरी	रौलट ऐक्ट जारी हुआ।
	२८ फरवरी	रौलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह की प्रतिज्ञा।
	१० अप्रैल	दिल्ली जाते हुए गिरफ़्तारी। बम्बई ले जाकर छोड़ दिये गये।
	१८ अप्रैल	सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। उपवास।
१८१८-१६		खिलाफत और पंजाब के अन्यायों के विरुद्ध

		आन्दोलन।
१६१६	नवम्बर	राबर्टसन कमीशन (दक्षिण-अफ्रीका)।
१६२०	१४ जून	लार्ड चेम्सफर्ड (वाइसराय) को पत्र लिखा।
	१ अगस्त	'कैसरे हिन्द' मेडल लौटा दिया। असहयोग का प्रारम्भ।
	सितम्बर	कलकत्ता में काँग्रेस का विशेष अधिवेशन।
	दिसम्बर	नागपुर काँग्रेस में असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ।
१६२१	फरवरी	ड्यूक ऑव् कनाट के नाम खुली चिट्ठी।
	मई	नये वाइसराय लार्ड रीडिंग से मुलाकात।
	सितम्बर	अली बन्धुओं की गिरफ्तारी।
	नवम्बर	'प्रिन्स ऑव वेल्स' का वम्बई में आगमन। बम्बई में दंगा।
	दिसम्बर	लार्ड रीडिंग से मालवीय-डेपुटेशन मिला।
१६२२	१४ जनवरी	वम्बई में नेताओं का सम्मेलन।
	जनवरी	लार्ड रीडिंग को चुनौती (अल्टिमेटम)
	१४ फरवरी	चौरीचौरा कांड।
	१० मार्च	अहमदावाद में (गांधी जी की) गिरफ्तारी।
	१८ मार्च	६ वर्ष की सजा।
१६२४	फरवरी	जेल से मुक्ति।
	१७ सितम्बर	दिल्ली में २१ दिन का उपवास। दिल्ली सम्मेलन।
	दिसम्बर	वेलगांव कांग्रेस की अध्यक्षता।
१६२७	दिसम्बर	मद्रास कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को लक्ष्य बनाया।
१६२८	दिसम्बर	कलकत्ता कांग्रेस में सरकार को राष्ट्रीय माँग स्वीकार करने के लिए एक वर्ष का समय

		दिया गया।
१६२६	मार्च	कलकत्ता में कपड़ों की होली। उस सम्बन्ध में गाँधी जी पर जुर्माना।
	मई	ब्रिटेन में पार्लमेण्ट का चुनाव। मजदूर दल की विजय।
	३१ अक्तूबर	वाइसराय की घोषणा।
	...	नेताओं की घोषणा।
	२३ दिसम्बर	वाइसराय से मुलाकात।
	३१ दिसम्बर	लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया।
१६३०	२६ जनवरी	सारे देश में स्वतंत्रता-दिवस मनाया गया।
	१५ फरवरी	भारतीय कांग्रेस कमेटी ने गाँधी जी को डिक्टेटर नियत किया और सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में उन्हें सर्वाधिकार दिये।
	४ मार्च	लार्ड इरविन के नाम पत्र।
	१२ मार्च	दाँड़ी-यात्रा।
	६ अप्रैल	दाँड़ी में नमक कानून भंग किया।
	१७ अप्रैल	वाइसराय ने प्रेस-आर्डिनेंस जारी किया।
	२५ अप्रैल	विट्ठलभाई पटेल ने असेम्बली की अध्यक्षता से इस्तीफ़ा दिया।
	५ मई	गाँधी जी की गिरफ्तारी। १८२७ के रेगुलेशन २५ के अनुसार यरवदा जेल में नज़रबन्द।
	१६ मई	कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक।
	२० मई	यरवदा जेल में श्री स्लोकाम्ब की गाँधी जी से मुलाकात।
	२१ मई	धरासणा पर धावा।
	२३ मई	श्रीमती सरोजनी नायडू की गिरफ्तारी और

	सज़ा ।
२४ मई	बडाला की नमक की क्यारियों पर सार्वजनिक धावा ।
२७ मई	मालवीय जी की गिरफ्तारी और रिहाई ।
१० जून	साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई ।
२० जून	स्लोकाम्ब की मोतीलाल जी से मुलाक़ात ।
३० जून	मोतीलाल जी की गिरफ्तारी और सज़ा ।
४ जुलाई	मालवीय जी भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य नामज़द हुए ।
२० जुलाई	जयकर-सप्रू और वाइसराय में समझौते की बातचीत का आरंभ ।
२३ जुलाई	जयकर-सप्रू जेल में गांधी जी से मिले ।
३१ जुलाई	वाइसराय ने मोतीलाल एवं जवाहरलाल जी को जेल में गांधी जी से मिलकर सुलह के बारे में सलाह-मशविरा करने की आज्ञा दी ।
३ अगस्त	बम्बई में वल्लभभाई और मालवीय जी की गिरफ़्तारी ।
७ अगस्त	मौ० अबुलकलाम आज़ाद स्थानापन्न कांग्रेस अध्यक्ष हुए ।
६ अगस्त	मालवीय जी की रिहाई ।
१३ अगस्त	यरवदा में जयकर-सप्रू की उपस्थिति में नेहरूद्वय की गांधी जी और सरोजनी देवी से मुलाकात ।
२१ अगस्त	मौ० आज़ाद की गिरफ्तारी और सज़ा ।
२६ अगस्त	कांग्रेस कार्य-कारिणी गैर-कानूनी घोषित की गई ।

१६३०	२७ अगस्त	गाँधी जी के प्रस्तावों को लेकर जयकर-सप्रू वाइसराय (लार्ड इरविन) से मिले।
	२८ अगस्त	कांग्रेस-कार्य-कारिणी की बैठक। मालवीय जी, विट्ठल भाई और डा० अंसारी की गिरफ्तारी।
	५ सितम्बर	समझौते की बातचीत भंग। पत्र-व्यवहार प्रकाशित।
१६३१	२५ जनवरी	वाइसराय की घोषणा।
	२६ जनवरी	घोषणा के अनुसार कार्य-कारिणी के सदस्य जेलों से छोड़ दिये गये। कांग्रेस संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देने की आज्ञा हटा ली गई।
	१६ फरवरी से ४ मार्च	गांधी जी और वाइसराय के बीच समझौते की बातें।
	५ मार्च	भारत सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता। सत्याग्रह आन्दोलन बन्द। आर्डिनेंस उठा लिये गये और कैदी छोड़ दिये गये।
	२८ मार्च	करांची में कांग्रेस का अधिवेशन।
	२६ अगस्त	गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने के लिए गाँधी जी की इंग्लैंड-यात्रा।
	१२ सितम्बर	लन्दन पहुँचे।
	५ दिसम्बर	लन्दन से फ्रांस के लिए प्रस्थान।
	६ दिसम्बर	रोम्याँ रोलाँ से मुलाकात।
	६ से ११ तक	रोम्याँ रोलाँ से साथ रहे।
	१३ दिसम्बर	मुसोलिनी से मुलाकात।
	१४ दिसम्बर	ब्रिंडसी से बम्बई के लिए प्रस्थान।
	२८ दिसम्बर	बम्बई पहुँचे।

		पटना पहुँचे ।
	२ अप्रैल	वैयक्तिक सत्याग्रह स्थगित करने की घोषणा ।
	२५ जून	पूना में किसी अज्ञात व्यक्ति-द्वारा मोटर पर बम फेंक कर हत्या का प्रयत्न ।
	जुलाई	सार्वजनिक क्षेत्र में विरोधियों के प्रति असहिष्णुता दिखाने के प्रायश्चित्त में ७ दिन का उपवास ।
	१७ सितम्बर	कांग्रेस से बिलकुल अलग होने की घोषणा ।
	२६ अक्टूबर	अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना ।
१९३५	२३ मार्च	पिछड़ा हुआ काम पूरा करने लिए चार सप्ताह का मौन ।
	अप्रैल	इंदौर हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व ।
	दिसम्बर	कार्याधिक्य के कारण स्वास्थ्य टूट गया ।
१९३६	जनवरी	स्वास्थ्य-लाभ के लिए बम्बई ले जाये गये ।
	जून	वर्धा के निकट सेगांव में बस गये ।
	दिसम्बर	फैजपुर अधिवेशन में सम्मिलित हुए । त्रावणकोर की यात्रा ।
१९३७	मार्च	अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को पद ग्रहण के सम्बन्ध में हल सुझाया ।
	अक्टूबर	बंगाल के नजरबंदों को छुड़ाने के उद्योग में कलकत्ता-यात्रा ।
	दिसम्बर	डाक्टरों की सलाह पर स्वास्थ्य-सुधार के लिए जुहू में विश्राम ।
१९३८	जनवरी	लार्ड लोथियन सेगांव में गांधी जी मिले ।
	फरवरी	हरिपुरा अधिवेशन में सम्मिलित हुए। बंगाल के नजरबंदों को छुड़ाने के उद्योग में पुनः कलकत्ता-यात्रा ।

	मई	खां अब्दुल गफ़्फ़ार खां के साथ सीमाप्रान्त के पेशावर जिले का दौरा।
	अक्टूबर	चेकोस्लोवाकिया के आत्मसमर्पण पर चेक लोगों को अहिंसात्मक प्रतिरोध का उपदेश।
	नवम्बर	जर्मनी के पददलित यहूदियों से सहानुभूति-प्रकाश।
	दिसम्बर	जापानी पार्लियामेंट के सदस्य ताकोश्राका सेगांव में गांधी जी से मिले।
१९३९	जनवरी	डा० कगावा सेगांव में गांधी जी से मिले।
	फरवरी	राजकोट के ब्रिटिश रेजिडेंट की निंदा। श्री सुभाष वोस के दुवारा राष्ट्रपति चुने जाने के विरोध में पुराने कांग्रेस नेताओं को वर्किङ्ग कमेटी से हट जाने की सलाह।
	३ मार्च	राजकोट-प्रकरण पर आमरण अनशन।
	४ मार्च	वाइसराय का हस्तक्षेप। चीफ जस्टिस सर मारिस ग्वायर को मध्यस्थ वनाने का सुझाव।
	७ मार्च	उपवास की समाप्ति।
	अप्रैल	राजकोट-प्रकरण पर सर मारिस ग्वायर के फैसले से लाभ उठाने से इन्कार।
	मई	राजकोट-प्रकरण पर वाइसराय, ठाकुर साहब तथा सब लोगों से क्षमा-याचना।
	सितम्बर	द्वितीय महायुद्ध की घोषणा के वाद ही वाइसराय के निमंत्रण पर शिमला जाकर उनसे मिले। इंग्लैंड से सहानुभूति-प्रकाश।
	१८ अक्टूबर	वाइसराय की घोषणा पर निराशा प्रकट की, 'कांग्रेस ने रोटी मांगी और पत्थर मिला।'

	१ नवम्बर	गांधी जी, मि० जिन्ना तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद साथ-साथ वाइसराय से मिले, परन्तु वार्त्ताएँ विफल हुईं।
१९४०	५ फरवरी	वाइसराय से भेंट के बाद कहा—मुझे शांतिपूर्ण तथा सम्मानपूर्ण समझौते की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती।
	२१ फरवरी	शांतिनिकेतन में कवीन्द्र रवीन्द्र-द्वारा स्वागत। विश्वभारती के संरक्षक बने।
	मार्च	रामगढ़ कांग्रेस में सम्मिलित हुए।
	जून	वर्किङ्ग कमेटी ने गांधी जी को कांग्रेस का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी से मुक्त किया।
	२ जुलाई	प्रत्येक अँग्रेज के नाम अपील।
	अगस्त	वर्किङ्ग कमेटी द्वारा गांधी जी से कांग्रेस का नेतृत्व करने की प्रार्थना।
	अक्टूबर	गांधी जी के नेतृत्व में वैयक्तिक सत्याग्रह संग्राम का श्रीगणेश।
	२५ दिसम्बर	बड़े दिन पर सद्भावना प्रकट करने के लिए गाँधी जी ने २५ दिसम्बर से ४ जनवरी १९४१ तक सत्याग्रह संग्राम स्थगित कर दिया।
१९४१	जनवरी-दि०	१९४१ भर सत्याग्रह संग्राम चलता रहा और क्रमशः सारे देश में फैल गया। सत्याग्रहियों से जेलें भर गईं।
	६ दिसम्बर	वैयक्तिक सत्याग्रहियों की रिहाई।
	२६ दिसम्बर	वर्किङ्ग कमेटी ने गांधी जी को कांग्रेस के नेतृत्व के भार से मुक्त कर दिया।
१९४२	जनवरी	गांधी जी ने पुनः अपने आदर्शों के अनुसार

		कांग्रेस का नेतृत्व करना स्वीकार किया।
	१८ फरवरी	कलकत्ता में मार्शल च्यांग-काई-शेक से भेंट।
	२७ मार्च	नई दिल्ली में सर स्ट्रफर्ड क्रिप्स से भेंट।
	१६ अप्रैल	गांधी जी ने क्रिप्स प्रस्तावों पर हरिजन में लेख लिख कर उनकी भर्त्सना की।
	मई	'भारत छोड़ो' की मांग पहली बार उपस्थित की।
	जुलाई	वर्किंग कमेटी ने भारत छोड़ो प्रस्ताव पास किया तथा गांधी जी से देश का नेतृत्व करने की प्रार्थना की।
	८ अगस्त	बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ।
	६ अगस्त	तड़के गांधी जी, कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य तथा अन्य कांग्रेस नेता गिरफ़्तार।
	१५ अगस्त	आगा खाँ महल जेल में श्री महादेव देसाई का देहान्त।
	२३ सितम्बर	केन्द्रीय एसेम्बली में गृह-सदस्य के मिथ्या आक्षेपों पर गांधी जी की चुनौती।
१६४३	१० फरवरी	सरकारी नीति के विरोध में आगा खाँ महल में गाँधी जी के ३ सप्ताह के उपवास का आरम्भ।
	१६ फरवरी	६ डाक्टरों ने घोषणा की कि गांधी जी का स्वास्थ्य और बिगड़ गया है।
	१८ फरवरी	गांधी जी की अवस्था चिंताजनक।
	२१ फरवरी	गांधी जी के प्राणों पर संकट।
	२७ फरवरी	गांधी जी जीवन-संकट से निकल आये।
	३ मार्च	उपवास की समाप्ति। प्रातःकाल ६-३४ पर

		कस्तूर बा के हाथ संतरे का रस लिया।
	२६ मई	मि० जिन्ना के नाम गांधी जी का पत्र सरकार ने रोक लिया।
	४ दिसम्बर	श्रीमती कस्तूर बा गाँधी की बीमारी का समाचार बाहरी दुनिया को दो लाइनों की सरकारी विज्ञप्ति से मिला।
१९४४	२० फरवरी	श्रीमती कस्तूर बा गांधी की अवस्था चिंता-जनक होंने की सरकारी घोषणा।
	२२ फरवरी	शिवरात्रि के दिन सायंकाल ७-३५ पर श्रीमती कस्तूर बा का देहान्त।
	६ अप्रैल	गाँधी जी के मलेरिया से पीड़ित होने का समाचार दो लाइन की सरकारी विज्ञप्ति में दिया गया।
	२८ अप्रैल	एक सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया कि गाँधी जी की हालत चिंता पैदा कर रही है।
	३ मई	गाँधी जी की अवस्था गंभीर।
	६ मई	स्वास्थ्य के कारणों से गाँधी जी की बिला शर्त रिहाई का आदेश।
	११ मई	विश्राम के लिए जूहू पहुँचे।
	२१ मई	जीवन में पहली बार 'मिशन टू मास्को' नामक सवाक चित्र देखा।
	१५ जून	जुहू में लगभग एक महीना विश्राम करने के बाद पूना रवाना।
	१८ जून	गाँधी और वाइसराय में पत्र-व्यवहार के कुछ अंश प्रकाशित।
	२ जुलाई	गाँधी जी विश्राम के लिए पूना पहुँचे।
	९ जुलाई	कांग्रेस-लीग समझौता के लिए राजा जी का

		हल प्रकाशित।
	१२ जुलाई	'न्यूज क्रानिकल' के संवाददाता से भेंट का विवरण प्रकाशित।
	३ अगस्त	गाँधी जी वर्धा पहुँचे।
	१८ अगस्त	गाँधी-वेवेल पत्र-व्यवहार प्रकाशित।
	६ सितम्बर	मि० जिन्ना से मिलने के लिए बम्बई पहुँचे।
	२७ सितम्बर	गांधी-जिन्ना वार्ता विफल होने की घोषणा।
	दिसम्बर	गाँधी जी का एक दूसरा उपवास करने का विचार। बाद में यह विचार टल गया।
१९४५	१४ जून	काँग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों की रिहाई।
	२४ जून	शिमला-सम्मेलन आरम्भ।
	२९ जून	शिमला-सम्मेलन स्थगित।
	१४ जुलाई	शिमला-सम्मेलन विफल होने की घोषणा।
	२४ अगस्त	लार्ड वेवल लन्दन रवाना।
	१९ सितम्बर	नये प्रस्तावों की घोषणा।
	दिसम्बर	गाँधी जी कलकत्ता पहुँचे। बंगाल के गवर्नर केसी तथा वायसराय लार्ड वेवल से भेंट।
	दिसम्बर ४५ तथा जनवरी १९४६	बंगाल, आसाम तथा मद्रास प्रांत का दौरा।
१९४६	३ मार्च	ब्रिटिश मंत्रिदल का आगमन।
	३१ मार्च	क्रिप्स की मध्यस्थता में गाँधी-जिन्ना वार्ता।
	१६ मई	मंत्रिदल की योजना प्रकाशित।
	१७ मई	महात्मा गाँधी द्वारा मंत्रिदल की योजना स्वीकार कर लेने की सिफारिश।
	६ जून	लीग-द्वारा मंत्रिदल योजना स्वीकार।
	२५ जून	कांग्रेस-द्वारा दीर्घकालीन मंत्रिदल योजना

		स्वीकृत।
	२६ जून	मंत्रिदल भारत से रवाना।
	३० जून	बम्बई से पूना जाते हुए गाँधी जी की ट्रेन उलटने का विफल प्रयत्न।
	२६ जुलाई	लीग कौंसिल-द्वारा मंत्रिदल योजना अस्वीकृत।
	१६ अगस्त	कलकत्ता नरमेध।
	२४ अगस्त	अस्थायी सरकार की घोषणा।
	१० अक्टूबर	नोआखाली कांड।
	१५ अक्टूबर	अस्थायी सरकार में ५ लीगी नामजद।
	अक्टूबर का तीसरा सप्ताह	बिहार की दुखद घटनाएँ।
	५ नवम्बर	बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने प्रकट किया कि यदि बिहार के उपद्रव २४ घंटे में शांत न हो गये तो गाँधी जी आमरण अनशन करेंगे।
	२० नवम्बर	गाँधी जी श्रीरामपुर पहुँचे।
१९४७	२ जनवरी	नोआखाली के गाँवों की पैदल यात्रा।
	फरवरी	गाँधी जी नोआखाली की यात्रा स्थगित कर बिहार रवाना।
	२० फरवरी	ब्रिटेन-द्वारा २० जून १९४८ तक भारत से हट जाने की घोषणा।
	मार्च	पंजाब हत्याकांड।
	२८ मार्च	नये वाइसराय लार्ड माउंटबेटन से गांधी जी का ब्रिटिश सरकार की नीति को कार्यान्वित करने का आग्रह।
	३१ मार्च	गांधी-जिन्ना वार्ता। गाँधी जी द्वारा भारत के विभाजन का विरोध।

१६ अप्रैल	शांति के लिए संयुक्त गांधी-जिन्ना अपील।
२ जून	लंदन से वाइसराय के लौटने पर गांधी जी से भेंट। ब्रिटिश सरकार की नई योजना—१५ अगस्त तक सत्ता हस्तांतरित कर देने का निश्चय।
६ जून	नेताओं-द्वारा भारत के विभाजन की ब्रिटिश योजना स्वीकार।
१४ जून	गांधी जी द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के नेताओं से निर्णय को स्वीकार करने की अपील।
१८ जून	भारतीय स्वाधीनता बिल पर शाही मुहर।
७ अगस्त	गांधी जी-द्वारा हिंदू-मुसलिम ऐक्य के लिए शेष जीवन पाकिस्तान में बिताने की घोषणा।
६ अगस्त	गांधी जी नोआखाली जाने के उद्देश्य से कलकत्ता पहुँचे।
१२ अगस्त	मुस्लिम नेताओं के आश्वासन पर नोआखाली यात्रा स्थगित। कलकत्ता में शांति-स्थापन का प्रयत्न।
१६ अगस्त	एक हिंदू बस्ती में एक मुसलमान के परित्यक्त मकान में मि० सुहरावर्दी के साथ गांधी जी का डेरा। निवास-स्थान पर हिंदुओं का उग्र प्रदर्शन।
२५ अगस्त	गांधी जी की अहिंसा का जादू-भरा प्रभाव। जिस नगर में हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे उसी नगर में

दोनों एक दूसरे के गले मिले और संयुक्त रूप से स्वाधीनता-दिवस मनाया।

७ सितम्बर   दिल्ली के लिए प्रस्थान।
